

[2024] 9 एससीआर 257 : 2024 आईएनएससी 669

धनराज असवानी

बनाम

अमर एस. मूलचंदानी व अन्य

(आपराधिक अपील सं. 2501/2024)

09 सितंबर 2024

[भा.मु.न्या. डॉ. धनंजय वाई. चंद्रचूड़, न्या. जे.बी. पारदीवाला एवं न्या. मनोज मिश्रा,]

विचारणीय विवादक

क्या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 के अंतर्गत अग्रिम जमानत हेतु आवेदन किसी अभियुक्त के कहने पर स्वीकार्य है, जबकि वह किसी अन्य मामले में संलिप्तता के कारण पहले से ही न्यायिक अभिरक्षा में है।

शीर्ष टिप्पणियां

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 438 - यदि अभियुक्त किसी एक मामले के संबंध में पहले से ही न्यायिक अभिरक्षा में है, तो वह किसी अन्य मामले में अग्रिम जमानत हेतु आवेदन कर सकता है - ऐसी अग्रिम जमानत याचिकाओं की स्वीकार्यता - विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा व्यक्त भिन्न राय:

अभिनिर्धारित: किसी अन्य अपराध में न्यायिक अभिरक्षा में रहे अभियुक्त के कहने पर दायर अग्रिम जमानत याचिका पोषणीय है - अभियुक्त किसी अपराध के संबंध में अग्रिम

जमानत मांगने का हकदार है, जब तक कि उसे उस अपराध के संबंध में गिरफ्तार नहीं किया जाता है - एक बार जब उसे गिरफ्तार कर लिया जाता है, तो उसके लिए उपलब्ध एकमात्र उपाय धारा 437 या धारा 439 के तहत नियमित जमानत के लिए आवेदन करना है, जैसा भी मामला हो - दं.प्र.सं. या किसी अन्य कानून में ऐसा कोई स्पष्ट या निहित प्रतिबंध नहीं है जो सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय को किसी अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार करने और निर्णय लेने से रोकता है, जबकि आवेदक किसी अन्य अपराध के संबंध में अभिरक्षा में है - धारा 438 में किसी प्रतिबंध का पठन नहीं किया जा सकता है जो किसी अभियुक्त को किसी अन्य अपराध में अभिरक्षा में रह रहे अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत हेतु आवेदन करने से रोकता है, क्योंकि यह प्रावधान के उद्देश्य और विधानमंडल के उद्देश्य के खिलाफ होगा - धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत देने के लिए न्यायालय का अधिकार धारा 438(4) और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 आदि जैसे अन्य कानूनों में निर्धारित है - जबकि किसी विशेष अपराध के संबंध में पहले से ही अभिरक्षा में लिया गया व्यक्ति किसी अन्य अपराध में गिरफ्तारी की आशंका करता है, तो, बाद का अपराध सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए एक अलग अपराध है - इस प्रकार, बाद के अपराध के संबंध में अभियुक्त के साथ-साथ जांच एजेंसी को कानून द्वारा प्रदत्त सभी अधिकार स्वतंत्र रूप से संरक्षित हैं - किसी अपराध में पूछताछ/जांच के उद्देश्य से, जांच एजेंसी अभियुक्त की रिमांड मांग सकती है, जबकि वह पिछले अपराध

के संबंध में अभिरक्षा में है, जब तक कि बाद के अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत देने का कोई आदेश पारित नहीं किया गया हो - धारा 438 के तहत, किसी व्यक्ति के लिए गिरफ्तारी-पूर्व जमानत हेतु आवेदन करने की पूर्व शर्त "यह मानने का कारण है कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है" - अतः, उक्त अधिकार का प्रयोग करने के लिए एकमात्र पूर्व शर्त अभियुक्त की यह आशंका है कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है - एक मामले में अभिरक्षा का दूसरे मामले में गिरफ्तारी की आशंका को दूर करने का प्रभाव नहीं होता है - धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत के प्रावधान की सहायता से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत किसी अभियुक्त के अपने व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करने के अधिकार को कानून द्वारा स्थापित वैध प्रक्रिया के बिना पराजित या विफल नहीं किया जा सकता है - ऐसी प्रक्रिया को अनुच्छेद 14 के तहत निष्पक्षता, तर्कसंगतता और स्पष्ट गैर-मनमानी की परीक्षा भी पास करनी चाहिए। [पैरा 60, 66]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 46 - 'गिरफ्तारी कैसे की गई' - "विश्वास करने का कारण" - धारा 267 के तहत बंदी ट्रांजिट वारंट (पी.टी. वारंट) - "अन्य कार्यवाही" - क्या किसी व्यक्ति के पास, किसी विशेष अपराध हेतु अभिरक्षा में रहने के दौरान, "यह मानने का कारण" हो सकता है कि उसे किसी अन्य गैर-जमानती अपराध के संबंध में गिरफ्तार किया जा सकता है - सुनील कल्लानी में राजस्थान उच्च न्यायालय ने तर्क दिया कि एक बार किसी व्यक्ति को किसी अपराध के संबंध में अभिरक्षा में ले लिया जाता है, उसके बाद उसे किसी अलग अपराध के संबंध में

गिरफ्तार करना संभव नहीं है क्योंकि गिरफ्तारी के लिए आवश्यक शर्तों में से एक वास्तविक स्पर्श या कारावास के माध्यम से अभियुक्त के शरीर को पुलिस अधिकारियों की अभिरक्षा में रखना है - चूंकि अभिरक्षा में रहने के दौरान कोई वास्तविक स्पर्श या कारावास नहीं हो सकता है, इसलिए उसके पास "यह मानने का कारण" नहीं हो सकता है:

अभिनिर्धारित: इस दृष्टिकोण से सहमति नहीं है - राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए तर्क में दो मौलिक भ्रांतियां हैं - सबसे पहले, उच्च न्यायालय पहले अपराध में अभिरक्षा से मुक्त होने के तुरंत बाद किसी अन्य अपराध के संबंध में अभिरक्षा में लिए गए व्यक्ति की गिरफ्तारी की संभावना पर विचार करने में विफल रहा - उच्च न्यायालय के तर्क में दूसरी भ्रांति यह है कि किसी अन्य अपराध के संबंध में किसी अभियुक्त की गिरफ्तारी नहीं हो सकती है, जबकि वह पहले से ही किसी अपराध के संबंध में अभिरक्षा में है - जिन तरीकों से पहले से ही अभिरक्षा में लिए गए व्यक्ति को गिरफ्तार किया जा सकता है, उनकी गणना की गई - यह मानना त्रुटिपूर्ण है कि अभिरक्षा में रहते हुए किसी व्यक्ति के पास यह "विश्वास करने का कारण" नहीं हो सकता है कि उसे किसी अन्य अपराध के संबंध में गिरफ्तार किया जा सकता है - हालांकि धारा 46 के स्पष्ट रूप से पठन पर यह स्पष्ट हो जाता है कि गिरफ्तारी में गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के शरीर को वास्तव में छूना या बंधक बनाना शामिल है, हालांकि, वास्तविक स्पर्श के बिना भी गिरफ्तारी की जा सकती है यदि गिरफ्तार किया जाने वाला व्यक्ति शब्दों या कार्यों द्वारा अभिरक्षा में आ जाता है - वास्तव

में शरीर को पकड़ने या स्पर्श किए बिना भी वैध गिरफ्तारी की जा सकती है - अभियुक्त को यह विश्वास दिलाना कि वह मजबूर है और इसके बाद उसे ऐसी मजबूरी में प्रस्तुत होने के लिए बाध्य करना भी गिरफ्तारी के लिए पर्याप्त होगा - यह धारा 46 के तहत गिरफ्तारी के तौर-तरीकों के अनुरूप है - उन मामलों में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया जहां पहले से ही अभिरक्षा में किसी व्यक्ति को किसी अन्य अपराध के संबंध में गिरफ्तार करने की आवश्यकता होती है, यह व्याख्या की गयी - जब अभिरक्षा में किसी व्यक्ति का सामना किसी अन्य अपराध के संबंध में प्राप्त पी.टी. वारंट से होता है, तो ऐसे व्यक्ति के पास पी.टी. वारंट प्राप्त करने वाले पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में प्रस्तुत होने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता है - इस प्रकार, हालांकि स्पर्श द्वारा अभिरक्षा में रखने की कोई बात नहीं है, फिर भी पी.टी. वारंट दिखाने में पुलिस अधिकारी की कार्रवाई के आधार पर अभियुक्त द्वारा अभिरक्षा में प्रस्तुत होना है। अभियुक्त के लिए वारंट - इसके बाद, अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त को पेश करने पर, जैसे किसी स्वतंत्र व्यक्ति की गिरफ्तारी के मामले में, जो अभिरक्षा में नहीं है, अभियुक्त को या तो पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा में भेजा जा सकता है, या उसे जमानत पर बढ़ाया जा सकता है और पहले अपराध में अभिरक्षा में वापस भेजा जा सकता है - अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त को पेश करने की आवश्यकता के लिए धारा 267 लागू की जा सकती है, जो उसके बाद उसे जांच एजेंसी की अभिरक्षा में भेज सकता है - प्रावधान की ऐसी व्याख्या "अन्य कार्यवाही" शब्दों को सही प्रभाव

देगी, जैसा कि वे धारा 267 में दिखाई देते हैं, जिसे जांच के चरण में कार्यवाही को बाहर करने के लिए नहीं समझा जा सकता है - राजस्थान, इलाहाबाद और दिल्ली उच्च न्यायालयों द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के विपरीत, एक व्यक्ति, जब किसी अपराध के संबंध में अभिरक्षा में होता है, तो उसे पहले अपराध में अभिरक्षा से रिहा होने के बाद, या यहां तक कि पहले अपराध में अभिरक्षा में रहने के दौरान, एक अलग अपराध के संबंध में गिरफ्तार किया जा सकता है। [पैरा 38, 40-42, 46, 49, 51-53]

गिरफ्तारी - आगामी गिरफ्तारी - अभियुक्त पर प्रभाव -
अपीलार्थी का अभिवाक् है कि चूंकि दं.प्र.सं. की धारा 438 का उद्देश्य अभियुक्त को गिरफ्तारी के अपमान से बचाना है, अतः इसके संरक्षण के दायरे में वह व्यक्ति शामिल नहीं होगा जो पहले से ही अभिरक्षा में है:

अभिनिर्धारित: अस्वीकृति - प्रत्येक गिरफ्तारी के साथ व्यक्ति का अपमान और बदनामी बढ़ती है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि प्रत्येक बाद की गिरफ्तारी कानूनी परेशानियों में निरंतर या बढ़ती हुई भागीदारी को रेखांकित करती है जो व्यक्ति की गरिमा और उसकी सार्वजनिक प्रतिष्ठा को नष्ट कर सकती है। प्रारंभिक गिरफ्तारी ही अक्सर सामाजिक कलंक और व्यक्तिगत संकट की लहर लाती है, क्योंकि व्यक्ति अपनी कानूनी स्थिति के निहितार्थों से जूझता है। जब बाद में गिरफ्तारी होती है, तो यह भावनात्मक और सामाजिक बोझ को और बढ़ा देती है, जिससे उसके अपराधी होने की धारणा बढ़ जाती है और समाज से नकारात्मक निर्णय मजबूत होते हैं। अलग-अलग अपराधों के

संबंध में बाद की गिरफ्तारी, जबकि व्यक्ति किसी विशेष अपराध में अभिरक्षा में है, व्यक्ति को उसके समुदाय से और अलग कर देती है और उसकी व्यक्तिगत अखंडता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। इस कारण से, यह मान लेना त्रुटिपूर्ण है कि बाद की गिरफ्तारी अपमान के स्तर को कम करती है। इसके विपरीत, प्रत्येक अतिरिक्त गिरफ्तारी व्यक्ति की बेइज्जती को बढ़ाती है, जिससे ऐसे कानूनी उलझनों का संचयी प्रभाव और भी विनाशकारी हो जाता है। [पैरा 58]

आपराधिक विधि - प्रक्रियात्मक विधि - इसके तहत प्रदत्त अधिकार - महत्व - चर्चा की गयी।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 438 - अग्रिम जमानत - अवधारणा - उद्भव - चर्चा की गयी।

उद्धृत निर्णयज विधि

नरिंदरजीत सिंह साहनी बनाम भारत संघ [2001] पूरक 4 एससीआर 114 : (2002) 2 एससीसी 210 - प्रतिष्ठित।

सुनील कल्लानी बनाम राजस्थान राज्य (2021) एससीसी ऑनलाइन राज 1654; राजेश कुमार शर्मा बनाम सीबीआई (2022) एससीसी ऑनलाइन सभी 832; बशीर हसन सिद्दीकी बनाम राज्य (रा.रा.क्षे.दि.स.) (2023) एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 7544 - अस्वीकृत।

करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य [1994] 2 एससीआर 375 : (1994) 3 एससीसी 569; गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य [1980] 3 एससीआर 383: (1980) 2 एससीसी 565; सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) [2020] 2 एससीआर 1 : (2020) 5 एससीसी 1; पृथ्वी राज

चौहान बनाम भारत संघ [2020] 2 एससीआर 727: (2020) 4 एससीसी 727; सिद्धराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य [2010] 15 एससीआर 201 : (2011) 1 एससीसी 694; केंद्रीय जांच ब्यूरो विशेष जांच सेल- 1 नई दिल्ली बनाम अनुपम जे. कुलकर्णी [1992] 3 एससीआर 158: (1992) 3 एससीसी 141; तेजेश सुमन बनाम राजस्थान राज्य (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 76; उ.प्र. राज्य बनाम देवमन उपाध्याय [1961] 1 एससीआर 14 : एआईआर (1960) एससी 1125; तुषारभाई रजनीकांतभाई शाह बनाम गुजरात राज्य [2024] 8 एससीआर 235: (2024) एससीसी ऑनलाइन एससी 1897; ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक [1988] पूरक 1 एससीआर 1 : (1988) 2 एससीसी 602; पश्चिम बंगाल राज्य बनाम अनवर अली सरकार [1952] 1 एससीआर 284 : (1952) 1 एससीसी 1 - से संदर्भित।

अलनेश अकील सोमजी बनाम महाराष्ट्र राज्य (2021) एससीसी ऑनलाइन बॉम 5276; संजय कुमार सारंगी बनाम ओडिशा राज्य (2024) एससीसी ऑनलाइन ओरी 1334; अमीर चंद बनाम द क्राउन (1949) एससीसी ऑनलाइन पंज 20; एस. हरसिमरन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1984) आप. एलजे 253; राज्य बनाम के.एन. नेहरू (2011) एससीसी ऑनलाइन मद 1984; रोशन बीवी व अन्य बनाम तमिलनाडु सरकार के संयुक्त सचिव व अन्य (1983) एससीसी ऑनलाइन मद 163; सी. नटेसन बनाम तमिलनाडु राज्य व अन्य (1998) एससीसी ऑनलाइन मद 931; रणजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1995) आप. एलजे 3505; महाराष्ट्र राज्य बनाम यादव कोहाचड़े (2000) आप एलजे 959 - से संदर्भित।

एल्डरसन बनाम बूथ (1969) 2 ऑल ईआर 271 - से संदर्भित।

उद्धृत पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ

विधि आयोग की 48वीं रिपोर्ट (1972); विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट; ब्लैकस् लॉ डिक्शनरी (5वां संस्करण, 1979) - से संदर्भित।

अधिनियमों की सूची

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973; भारत का संविधान।

मुख्य शब्दों की सूची

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438; अग्रिम जमानत; पुलिस अभिरक्षा; न्यायिक अभिरक्षा; पहले से ही न्यायिक अभिरक्षा में अभियुक्त; एक अलग मामले में अग्रिम जमानत; "विश्वास करने का कारण"; गिरफ्तारी; बाद में गिरफ्तारी; अभिरक्षा; नियमित जमानत; गिरफ्तार किया गया; गिरफ्तारी की आशंका; एक अलग मामले/अपराध में गिरफ्तारी की आशंका; गिरफ्तार होने की संभावना; पहला अपराध; पहले अपराध में अभिरक्षा; अन्य अपराध; आमामी अपराध; अभियुक्त का प्रतिपेक्ष (रिमांड); पूर्व अपराध; गिरफ्तारी से पहले जमानत हेतु पूर्व शर्त; किसी अन्य गैर-जमानती अपराध के संबंध में गिरफ्तारी; वास्तविक स्पर्श या कारावास; औपचारिक गिरफ्तारी; अभिरक्षा में व्यक्ति की गिरफ्तारी की संभावना; बंदी ट्रांजिट वारंट; अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट।

से उद्धृत मामलें

आपराधिक अपीलीय अधिकारिता: आपराधिक अपील सं.
2501/2024

एबीए सं. 2801/2023 में बॉम्बे उच्च न्यायालय के दिनांक
31.10.2023 के निर्णय और आदेश से

पक्षकारों की ओर से उपस्थितियां

अपीलार्थी की ओर से उपस्थित अधिवक्तागण : सिद्धार्थ लूथरा,
वरिष्ठ अधिवक्ता, प्रशांत एस. केंजले, अमोल निर्मलकुमार
सूर्यवंशी, सुश्री सृष्टि पांडे, आशुतोष चतुर्वेदी, सुश्री गायत्री
विरमानी, शुभम गावंडे

प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्तागण : सिद्धार्थ दवे,
वरिष्ठ अधिवक्ता, शांतनु फांसे, एसएस बेडेकर, प्रस्तुत दलवी,
सुश्री विधि ठाकर, सिद्धांत शर्मा

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

जे.बी. पारदीवाला, न्या.

व्याख्या की सुविधा हेतु, इस निर्णय को निम्नलिखित भागों में
विभाजित किया गया है:

क. अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुतियाँ..... 4*

ख. प्रत्यर्थी सं. 1 (मूल अभियुक्त) की ओर से
प्रस्तुतियाँ..... 7*

ग. विचाराधीन मुद्दे पर विभिन्न उच्च न्यायालयों के विचार..... 10*

घ. विश्लेषण..... 25*

i. अग्रिम जमानत की अवधारणा का विकास..... 25*

ii. क्या किसी व्यक्ति को, किसी विशेष अपराध हेतु अभिरक्षा में रहते हुए, यह “विश्वास करने का कारण” हो सकता है कि उसे किसी अन्य गैर-जमानती अपराध के संबंध में गिरफ्तार किया जा सकता है?..... 44*

iii. दृष्टांत उदाहरण..... 63*

ड. निष्कर्ष 65*

1. सामान्य सार्वजनिक महत्व का एक संक्षिप्त प्रश्न, जिस पर न्यायिक राय में बहुत मतभेद है, जो इस न्यायालय के विचारार्थ आता है, इस प्रकार है::

“क्या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में, “दं.प्र.सं.”) की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत हेतु आवेदन किसी अभियुक्त के कहने पर पोषणीय है, जबकि वह पहले से ही किसी अन्य मामले में शामिल होने के संबंध में न्यायिक अभिरक्षा में है?”

2. यह अपील बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत आवेदन सं. 2801/2023 में पारित दिनांक 31.10.2023 के निर्णय एवं आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने यहां अपीलार्थी (मूल शिकायतकर्ता) द्वारा उठाई गई आपत्ति को खारिज कर दिया, जो कि

प्रत्यर्थी सं. 1 (मूल अभियुक्त) द्वारा पिंपरी पुलिस स्टेशन में पंजीकृत सीआर सं. 806/2019 के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 34 सह पठित क्रमशः धारा 406, 409, 420, 465, 467, 468, 471 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दायर अग्रिम जमानत आवेदन की स्थिरता के संबंध में थी। (संक्षेप में, "भा.दं.सं.") एवं इस प्रकार यह देखा गया कि यद्यपि प्रत्यर्थी सं. 1 पहले से ही ईसीआईआर सं. 10/2021 के संबंध में अभिरक्षा में हो सकता है, फिर भी वह एक अलग मामले के संबंध में अग्रिम जमानत हेतु प्रार्थना करने का हकदार होगा।

3. अभिलेख पर उपस्थित सामग्रियों से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं. 1 को ईसीआईआर सं.10/2021 के संबंध में गिरफ्तार किया गया था। अभिरक्षा में रहने के दौरान, उसने यहाँ अपीलार्थी के कहने पर अपने खिलाफ दर्ज सीआर सं.806/2019 के संबंध में गिरफ्तारी की आशंका जताई। ऐसी परिस्थितियों में, उसने उच्च न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत हेतु प्रार्थना की। यहाँ अपीलार्थी ने उक्त अग्रिम जमानत आवेदन की कार्यवाही में हस्तक्षेप किया एवं आपत्ति जताई कि चूंकि यहाँ प्रत्यर्थी सं.1 पहले से ही ईसीआईआर सं.10/2021 के संबंध में अभिरक्षा में है, अतः वह सीआर संख्या 806/2019 के संबंध में अग्रिम जमानत हेतु प्रार्थना नहीं कर सकता है। शिकायतकर्ता के रूप में यहाँ अपीलार्थी द्वारा उठाई गई आपत्ति को खारिज कर दिया गया और उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि प्रत्यर्थी सं. 1 यहां एक मामले में अभिरक्षा में हो सकता है, फिर भी यह उसे किसी अन्य मामले के संबंध में गिरफ्तारी-पूर्व जमानत मांगने से नहीं रोकेगा। चूंकि आपत्ति खारिज कर दी गई थी, अतः अपीलार्थी अब इस न्यायालय के समक्ष है।

क. अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुतियाँ

4. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ लूथरा ने निम्नलिखित दलीलें प्रस्तुत कीं:

- i. उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाकर गंभीर त्रुटि की कि यद्यपि एक व्यक्ति एक मामले में गिरफ्तारी के पश्चात् अभिरक्षा में हो सकती है, फिर भी ऐसा व्यक्ति किसी अन्य मामले के संबंध में दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत गिरफ्तारी-पूर्व जमानत हेतु आवेदन कर सकता है।
- ii. गिरफ्तारी का आवश्यक हिस्सा व्यक्ति (व्यक्ति का शरीर) को पुलिस अधिकारियों की अभिरक्षा में रखना है। अतः स्वाभाविक परिणाम यह है कि एक व्यक्ति जो पहले से ही अभिरक्षा में है, उसके पास यह विश्वास करने का कारण नहीं हो सकता है कि उसे गिरफ्तार कर लिया जाएगा क्योंकि वह पहले से ही गिरफ्तार है। दं.प्र.सं. की धारा 438 लागू करने की पूर्व शर्त यह है कि अभियुक्त के पास यह विश्वास करने का कारण होना चाहिए कि उसे "गिरफ्तार किया जा सकता है"। यदि अभियुक्त पहले से ही अभिरक्षा में है, तो उसके पास यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं हो सकता है कि उसे "गिरफ्तार किया जा सकता है।"
- iii. दं.प्र.सं. की धारा 438 का लाभकारी प्रावधान यह देखने के लिए बनाया गया था कि किसी भी संबंधित व्यक्ति की स्वतंत्रता को बेईमान या गैर-जिम्मेदार व्यक्ति या अभियोजन के प्रभारी अधिकारियों के कहने पर तुच्छ आधार पर खतरे में न डाला जाये। अगर दं.प्र.सं. की धारा 438 को लागू करने के पीछे यही उद्देश्य है, तो पहले से ही गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के लिए किसी भी तरह के अपमान का सवाल ही नहीं उठता है।

- iv. यदि किसी मामले के संबंध में अभिरक्षा में रहने वाले किसी अभियुक्त को किसी अन्य मामले के संबंध में दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत दी जाती है, तो उसके लिए दं.प्र.सं. की धारा 438(2)(i) के तहत लगाई जा सकने वाली शर्त की आवश्यकता को पूरा करना संभव नहीं होगा, अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर पूछताछ हेतु स्वयं को उपलब्ध कराना है। दूसरे शब्दों में, अभिरक्षा में लिया गया व्यक्ति दं.प्र.सं. की धारा 438(2)(i) के तहत लगाई जा सकने वाली शर्त को पूरा करने या उसका पालन करने में सक्षम नहीं होगा। यह अग्रिम जमानत देने के लिए एक महत्वपूर्ण विचार है, अगर कोई व्यक्ति दं.प्र.सं. की धारा 438(2)(i) के तहत लगाई जा सकने वाली शर्तों को पूरा करने में असमर्थ है, तो उसे अग्रिम जमानत लेने की अनुमति देना अतार्किक होगा।
- v. यदि कोई व्यक्ति जो पहले से ही किसी मामले के सिलसिले में अभिरक्षा में है, उसे किसी दूसरे मामले के सिलसिले में गिरफ्तारी का डर है, तो उसे राहत नहीं मिल सकती है। ऐसी परिस्थितियों में, वह मजिस्ट्रेट और सत्र दोनों ही मामलों में "मान्य अभिरक्षा" के सिद्धांत पर आत्मसमर्पण कर सकता है और नियमित जमानत के लिए प्रार्थना कर सकता है।

5. श्री लूथरा ने अपने उपरोक्त प्रस्तुतियों को पुष्ट करने के लिए निम्नलिखित निर्णयों पर दृढ़तापूर्वक भरोसा किया:

- i. **कर्तार सिंह बनाम पंजाब राज्य**, [\[1994\] 2 एससीआर 375](#), (1994) 3 एससीसी 569
- ii. **गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य**, [\[1980\] 3 एससीआर 383](#), (1980) 2 एससीसी 565

- iii. *सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (रा.रा.क्षे. दिल्ली)*, [\[2020\] 2 एससीआर 1](#), (2020) 5 एससीसी 1
- iv. *सुनील कल्लानी बनाम राजस्थान राज्य*, 2021 एससीसी ऑनलाइन राज 1654
- v. *राजेश कुमार शर्मा बनाम सीबीआई*, 2022 एससीसी ऑनलाइन ऑल 832
- vi. *तेजेश सुमन बनाम राजस्थान राज्य*, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 76
- vii. *बशीर हसन सिद्दीकी बनाम राज्य (रा.रा.क्षे.दि.स.)*, (2023) एससीसी ऑनलाइन डेल 7544
- viii. *नरिंदरजीत सिंह साहनी बनाम भारत संघ*, [\[2001\] पूरक 4 एससीआर 114](#) (2002) 2 एससीसी 210

6. उपर्युक्त परिस्थितियों में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि उनकी अपील में गुणागुण होने के कारण, उसे स्वीकार किया जाए तथा उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जाये।

ख. प्रत्यर्थी सं. 1 (मूल अभियुक्त) की ओर से प्रस्तुतियां

7. मूल अभियुक्त की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ दवे ने वर्तमान अपील का पुरजोर विरोध किया एवं निम्नलिखित प्रस्तुतियां पेश कीं:
 - i. एक विधिक उक्ति यूबी जूस इबी रेमेडियम अर्थात् जहां अधिकार है, वहां उपचार भी है, को न्यायशास्त्र के मूल सिद्धांत के रूप में मान्यता प्राप्त है। अनीता कुशवाह बनाम पुष्प सुदान में इस

न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने (2016) 8 एससीसी 509 में रिपोर्ट दी कि न्याय तक पहुंच का अधिकार इतना अविभाज्य है कि कोई भी शासन प्रणाली इसके महत्व को अनदेखा नहीं कर सकती है, अपने नागरिकों को इससे वंचित करना तो दूर की बात है। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि प्राचीन रोमन न्यायशास्त्रीय उक्ति *जहां अधिकार है, वहां उपचार भी है*, ने न्याय तक पहुंच को एक बुनियादी एवं अविभाज्य मानवाधिकार के रूप में स्वीकार करने में योगदान दिया है, जिसे सभी सभ्य समाज मान्यता देते हैं एवं लागू करते हैं।

- ii. दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत पूर्व-गिरफ्तारी जमानत के लिए आवेदन करने का अभियुक्त का अधिकार विधि के तहत अपने उपायों का लाभ उठाने के लिए सक्षम न्यायालयों तक पहुंचने के उसके अधिकार से आंतरिक रूप से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार एक व्यक्ति दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत एक मामले में गिरफ्तारी से पहले जमानत हेतु आवेदन करने का हकदार होगा, भले ही वह किसी अन्य मामले के सिलसिले में अभिरक्षा में हो।
- iii. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के तहत पूर्व-गिरफ्तारी जमानत के लिए आवेदन करके अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करने के अभियुक्त के अधिकार को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के बिना समाप्त नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, इस तरह की प्रक्रिया को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की कसौटी पर निष्पक्षता, तर्कसंगतता और स्पष्ट गैर-मनमानी कसौटी पर भी उत्तीर्ण होना चाहिए।

- iv. दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत, किसी व्यक्ति के लिए पूर्व-गिरफ्तारी जमानत हेतु आवेदन करने की पूर्व शर्त यह है कि उसे “यह मानने का कारण हो कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है”। अतः, उक्त अधिकार का प्रयोग करने के लिए एकमात्र पूर्व शर्त अभियुक्त की यह आशंका है कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है।
- v. एक मामले में किसी अभियुक्त की गिरफ्तारी उसके किसी दूसरे मामले में पूर्व-गिरफ्तारी जमानत के लिए आवेदन करने के अधिकार को समाप्त नहीं कर सकती, क्योंकि दं.प्र.सं. की धारा 438 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत पूर्व-गिरफ्तारी जमानत देने की शक्ति के प्रयोग पर प्रतिबंध दं.प्र.सं. की धारा 438(4) के तहत निर्धारित किए गए हैं, जो यह प्रावधान करता है कि धारा 438 के प्रावधान भा.दं.सं. की क्रमशः धारा 376(3), 376कख, 376घक या 376घख के तहत गिरफ्तारी से जुड़े मामलों पर लागू नहीं होंगे।
- vi. सुशीला अग्रवाल (पूर्वोक्त) मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने दं.प्र.सं. की धारा 438 पर वैधानिक प्रतिबंधों पर विचार करते हुए कहा कि जहां संसद का उद्देश्य दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत न्यायालय की शक्तियों को बाहर करने या प्रतिबंधित करने का था, उसने ऐसा स्पष्ट शब्दों (जैसे कि धारा 438 (4)) में किया। गैर-जमानती अपराध करने के अभियुक्त किसी व्यक्ति के अग्रिम जमानत मांगने के अधिकार को प्रतिबंधित करने में विधायिका की ओर से चूक से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस न्यायालय द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 438 के पठन में न तो कोई व्यापक प्रतिबंध लगाया जा सकता है, न ही विवेक के प्रयोग

में कठोर दिशा-निर्देशों पर जोर दिया जा सकता है क्योंकि यह न्यायिक विधान के बराबर होगा।

- vii. अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (संक्षेप में, “**अधिनियम, 1989**”) की धारा 18 और 18क(2) के तहत गिरफ्तारी से पहले जमानत के लिए आवेदन करने के अधिकार पर एक वैधानिक प्रतिबंध भी पाया जाता है। उक्त प्रावधान यह प्रदान करते हैं कि दं.प्र.सं. की धारा 438 अधिनियम, 1989 के तहत मामलों पर लागू नहीं होगी। अधिनियम, 1989 की धारा 18 और 18क(2) के तहत वैधानिक रोक के बावजूद, पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने (2020) 4 एससीसी 727 में रिपोर्ट किया कि यदि कोई शिकायत अधिनियम, 1989 की प्रयोज्यता के लिए प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनाती है, तो उक्त अधिनियम की धारा 18 और 18क(2) के तहत रोक लागू नहीं होगी। उपर्युक्त निर्णय व्यक्तिगत स्वतंत्रता के पक्ष में व्याख्या अपनाने के न्यायिक दृष्टिकोण को इंगित करता है।

8. उपर्युक्त परिस्थितियों में, श्री दवे ने प्रार्थना की कि अपील में कोई गुणागुण न होने के कारण उसे खारिज कर दिया जाये।

ग. विचाराधीन मुद्दे पर विभिन्न उच्च न्यायालयों के विचार

9. सुनील कल्लानी (पूर्वोक्त) में, राजस्थान उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह विचार व्यक्त किया कि किसी ऐसे व्यक्ति के कहने पर अग्रिम जमानत हेतु आवेदन स्वीकार्य नहीं होगा जो पहले से ही गिरफ्तार है और किसी अन्य मामले के संबंध में पुलिस अभिरक्षा या न्यायिक अभिरक्षा में है। इस तरह का विचार अपनाने में उच्च

न्यायालय द्वारा अपनाया गया तर्क यह था कि एक व्यक्ति जो पहले से ही अभिरक्षा में है, उसके पास यह मानने का कोई कारण नहीं हो सकता कि उसे गिरफ्तार किया जाएगा क्योंकि वह पहले से ही गिरफ्तार है, भले ही किसी अन्य मामले में है। उच्च न्यायालय ने कहा कि गिरफ्तारी का अर्थ है वास्तव में व्यक्ति के शरीर को किसी पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में रखना या सीमित करना और गिरफ्तारी का एक अनिवार्य हिस्सा व्यक्ति, अर्थात् व्यक्ति के शरीर को पुलिस अधिकारियों की अभिरक्षा में रखना है। गिरफ्तारी के लिए इस आवश्यक आवश्यकता के प्रकाश में, एक व्यक्ति जो पहले से ही अभिरक्षा में है, उसके पास यह मानने का कोई कारण नहीं हो सकता कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है क्योंकि वह पहले से ही गिरफ्तार है। उच्च न्यायालय ने नरिंदरजीत सिंह साहनी (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों पर भरोसा करके अपने विचार को पुष्ट करने का प्रयास किया। उच्च न्यायालय द्वारा की गई कुछ प्रासंगिक टिप्पणियां नीचे उद्धृत हैं:

“17. दंड प्रक्रिया संहिता की योजना में गिरफ्तारी शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय V में धारा 41 में यह निर्धारित किया गया है कि पुलिस कब बिना वारंट के गिरफ्तारी कर सकती है। धारा 41ख में गिरफ्तारी की प्रक्रिया और अधिकारी के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। धारा 46 में उल्लेख किया गया है कि गिरफ्तारी कैसे की जानी है।

18. दं.प्र.सं. (पूर्वोक्त) की धारा 46 के पठन पर यह स्पष्ट है कि गिरफ्तारी का मतलब वास्तव में व्यक्ति के शरीर को छूना या पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में सीमित करना

होगा। दं.प्र.सं. की धारा 167 में यह प्रावधान है कि अभिरक्षा को जांच के उद्देश्य से पुलिस को दिया जा सकता है (जिसे प्रतिपेक्षण (रिमांड) कहा जाता है) या जेल भेजा जा सकता है (जिसे न्यायिक अभिरक्षा कहा जाता है)। इस प्रकार गिरफ्तारी का अनिवार्य हिस्सा व्यक्ति को पुलिस अधिकारियों की अभिरक्षा में रखना है, चाहे वह पुलिस स्टेशन का हो या उसके सामने या संबंधित जेल में हो।

19. अतः स्वाभाविक परिणाम यह है कि जो व्यक्ति पहले से ही अभिरक्षा में है, उसके पास यह मानने के लिए कोई कारण नहीं हो सकते कि उसे गिरफ्तार किया जाएगा, क्योंकि वह पहले से ही गिरफ्तार है। इसके मद्देनजर, दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत जमानत आवेदन की पूर्व शर्त अर्थात् यह मानने के कारण कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है, लागू नहीं होते क्योंकि व्यक्ति पहले से ही किसी अन्य मामले में गिरफ्तार है एवं पुलिस के सामने या जेल में अभिरक्षा में है।

XXX XXX XXX

23. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि ऐसे मामले हो सकते हैं, जहां किसी व्यक्ति को पहले से ही किसी विशेष मामले में गिरफ्तार किया जा चुका है, ऐसे व्यक्तियों द्वारा कई प्राथमिकी दर्ज किए जाने का सामना करना पड़ सकता है, जो उसे जेल से रिहा नहीं करना चाहते हैं और उक्त परिस्थितियों में एकमात्र विकल्प अन्य प्राथमिकी में अग्रिम जमानत लेना है, क्योंकि पुलिस सभी

मामलों में उसकी गिरफ्तारी की मांग करेगी। बाद में उसके खिलाफ गैर-जमानती अपराधों के लिए मामला दर्ज किया जा सकता है और ऐसी स्थिति में, उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन होगा। हालांकि यह न्यायालय ऊपर दिए गए प्रस्तुतीकरण से सहमत नहीं है। एक बार किसी व्यक्ति द्वारा किसी व्यक्ति के खिलाफ किए गए अपराध के संबंध में प्राथमिकी दर्ज हो जाने के बाद, वह उन अपराधों से सुरक्षा का दावा नहीं कर सकता है, जो उसने अन्य व्यक्तियों के साथ किए हों, जिनके पास ऐसे अभियुक्त के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करने का व्यक्तिगत अधिकार है। अभियुक्त को प्रत्येक मामले के संबंध में व्यक्तिगत रूप से जांच और उसके बाद के मुकदमे का सामना करना होगा। यह सवाल कि क्या उसे अन्य मामलों के लिए अलग से या संयुक्त रूप से दंडित किया जा सकता है, एक बिल्कुल अलग सवाल है और वर्तमान मामले में इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

24. हालांकि, नरिंदरजीत सिंह साहनी (पूर्वोक्त) में की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए और यह विचार करते हुए कि दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत एक आवेदन पर न्यायालय के निर्देश द्वारा निवारक गिरफ्तारी का उद्देश्य शून्य में एक आदेश होगा। चूंकि एक व्यक्ति पहले से ही पुलिस की अभिरक्षा में है, अतः इस न्यायालय का मानना है कि दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत इस तरह की अग्रिम जमानत याचिका झूठ नहीं होगी और ऐसे अभियुक्त को

अग्रिम जमानत देने से न्याय का उपहास होगा जो पहले से ही अभिरक्षा में है।

25. इस मामले को दूसरे कोण से जांचने पर यदि इस तरह के आवेदन को स्वीकार्य माना जाता है तो इसका परिणाम यह होगा कि यदि किसी अभियुक्त को अपहरण के अपराध हेतु गिरफ्तार किया जाता है और उसके खिलाफ हत्या करने का दूसरा मामला दर्ज किया जाता है और उसके खिलाफ किसी अन्य पुलिस थाने में अपहरण के लिए इस्तेमाल की गई कार चोरी करने का तीसरा मामला दर्ज किया जाता है और उक्त अभियुक्त को कार चोरी करने या हत्या करने के अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत दी जाती है तो संबंधित पुलिस जांच एजेंसी, जहां प्राथमिकी दर्ज की गई है, को व्यक्तिगत जांच करने और वसूली करने से रोका जाएगा क्योंकि एक बार अग्रिम जमानत दिए जाने के बाद वह सुशीला अग्रवाल (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सीमा के बिना काम करना जारी रखेगी। दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत परिकल्पित अग्रिम जमानत की अवधारणा विफल हो जाएगी। अग्रिम जमानत प्रदान करने का प्रावधान अनिवार्य रूप से संबंधित व्यक्ति को उस मुकदमे से रोकने के लिए है जिसका उद्देश्य आवेदक को गिरफ्तार कराकर उसे क्षति पहुंचाने और अपमानित करना है तथा जो व्यक्ति पहले से ही गिरफ्तार है, उसके लिए ऐसा कोई कारक उपलब्ध नहीं रहता है।

26. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह न्यायालय मानता है कि यदि कोई व्यक्ति पहले से ही गिरफ्तार है और किसी

अन्य आपराधिक मामले के संबंध में पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा में है, जो समान अपराध या अलग अपराधों के लिए हो सकता है, तो अग्रिम जमानत मान्य एवं पोषणीय नहीं होगी।”

(जोर दिया गया)

10. **राजेश कुमार शर्मा** (पूर्वोक्त) के मामले में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा उपर्युक्त दृष्टिकोण अपनाया था।
11. **बशीर हसन सिद्दीकी** (पूर्वोक्त) मामले में, दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने सुनील कल्लानी (पूर्वोक्त) और **राजेश कुमार शर्मा** (पूर्वोक्त) पर भरोसा करते हुए इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया कि गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति के कहने पर अग्रिम जमानत की मांग करने वाला आवेदन स्वीकार्य नहीं होगा, अगर ऐसा व्यक्ति पहले से ही गिरफ्तार है और किसी अन्य अपराध के सिलसिले में अभिरक्षा में है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 6 में उच्च न्यायालय द्वारा की गई प्रासंगिक टिप्पणियों को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

“6. अतः, सभी तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा सुनील कल्लानी (पूर्वोक्त) में पारित निर्णय और उसके बाद इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा राजेश कुमार शर्मा (पूर्वोक्त) में पारित निर्णय को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय दोनों उच्च न्यायालयों की राय के अनुरूप है कि चूंकि अभियुक्त एक अन्य प्राथमिकी में अभिरक्षा में है, इसलिए अन्य प्राथमिकी

में अग्रिम जमानत स्वीकार्य नहीं है। नतीजतन, वर्तमान याचिका खारिज की जाती है।”

(जोर दिया गया)

12. **अलनेश अकील सोमजी बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन बॉम 5276** में रिपोर्ट किया गया, बॉम्बे उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने विचार हेतु निम्नलिखित विधिक प्रश्न तैयार किये :

“क्या किसी ऐसे अभियुक्त द्वारा अग्रिम जमानत आवेदन स्वीकार किया जा सकता है जो पहले से ही गिरफ्तार है और किसी अन्य अपराध के संबंध में मजिस्ट्रेट अभिरक्षा में है?”

13. बॉम्बे उच्च न्यायालय ने **सुनील कल्लानी** (पूर्वोक्त) में राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय का भी संज्ञान लिया। **नरिंदरजीत सिंह साहनी** (पूर्वोक्त) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भी गौर किया गया और अंततः यह अभिनिर्धारित किया गया कि एक अभियुक्त को, भले ही उसे कई मामलों में गिरफ्तार किया गया हो, उसके खिलाफ दर्ज प्रत्येक अपराध में अग्रिम जमानत हेतु न्यायालय में जाने का पूरा अधिकार है, भले ही वह किसी अन्य अपराध के संबंध में पहले से ही अभिरक्षा में हो। उच्च न्यायालय का विचार था कि दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत आवेदनों पर सुनवाई एवं निर्णय उन अन्य मामलों से स्वतंत्र रूप से गुणागुण के आधार पर किया जाना चाहिए जिनमें वह पहले से ही अभिरक्षा में है। हम उच्च न्यायालय द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों का उल्लेख कर सकते हैं:

“8. प्रावधान के सामान्य पठन से पता चलता है कि दं.प्र.सं. की धारा 438(4) के तहत एकमात्र प्रतिबंध प्रदान किया गया है, जो कहता है कि यह प्रावधान उन अपराधों के आरोपों पर लागू नहीं होगा जो दं.प्र.सं. की धारा 438(4) में बताए गए हैं। इसी तरह, कुछ विशेष विधियों ने उन विशेष विधियों के तहत दंडनीय अपराधों के आरोपों के लिए दं.प्र.सं. की धारा 438 के संचालन को बाहर रखा है, उदाहरण के लिए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 18क दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत शक्तियों के प्रयोग पर रोक लगाती है।

9. सुशीला ए अग्रवाल एवं अन्य (पूर्वोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दं.प्र.सं. की धारा 438 के दायरे पर विचार करते हुए श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य के मामले में लिए गए निर्णय का अनुसरण किया है और अग्रिम जमानत देने की शक्ति के प्रयोग पर रोक या प्रतिबन्ध के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

“62. [...] इस पृष्ठभूमि में, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि संसद द्वारा शक्ति के प्रयोग (अग्रिम जमानत देने हेतु) पर लगाया गया एकमात्र प्रतिबंध या प्रतिबंध सकारात्मक प्रतिबंध के माध्यम से है, अर्थात् ऐसे मामले में जहां अभियुक्तों पर दंड संहिता की धारा 376(3) या धारा 376-कख या धारा 376-घक या धारा 376-

घख के तहत दंडनीय अपराध करने का आरोप है। दूसरे शब्दों में, संसद ने अब न्यायालय (अर्थात् सत्र न्यायालय एवं उच्च न्यायालय) को ऐसे अपराधों के अभियुक्तों को अग्रिम जमानत देने के अधिकारिता से वंचित कर दिया है। संशोधन [दंड प्रक्रिया संहिता संशोधन अधिनियम, 2018 ने धारा 438(4) पेश की] इस प्रकार है:

“438. (4) इस धारा की कोई भी बात भारतीय दंड संहिता की धारा 376 की उपधारा (3) या धारा 376-कख या धारा 376-घक या धारा 376-घख के अंतर्गत अपराध करने के आरोप पर किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी से संबंधित किसी मामले पर लागू नहीं होगी।

63. अतः, स्पष्ट रूप से, जहां संसद ने संहिता की धारा 438 के तहत न्यायालयों की शक्ति को बाहर करना या प्रतिबंधित करना चाहा, उसने ऐसा स्पष्ट शब्दों में किया। अन्य अपराधों के अभियुक्त नागरिकों के अग्रिम जमानत मांगने के अधिकार को प्रतिबंधित करने में संसद की चूक, अनिवार्य रूप से यह मानने के लिए प्रेरित करती है कि न तो इस न्यायालय द्वारा व्यापक प्रतिबंध लगाया जा सकता है, न ही विवेक के प्रयोग में अनम्य दिशा-निर्देशों पर जोर दिया जा सकता है - यह न्यायिक विधि के बराबर होगा”।

10. इसी प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया एवं अन्य (पूर्वोक्त) के मामले में निम्नलिखित टिप्पणियां की हैं:

“39. पांचवां, धारा 438 के प्रावधानों को अभियुक्त की गिरफ्तारी के बाद लागू नहीं किया जा सकता है। गिरफ्तार अभियुक्त को "अग्रिम जमानत" देने में, उस अपराध या अपराधों के संबंध में विरोधाभास शामिल है जिसके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है। गिरफ्तारी के बाद, अभियुक्त को धारा 437 या धारा 439 के तहत अपना उपाय तलाशना चाहिए, यदि वह उस अपराध या अपराधों के संबंध में जमानत पर रिहा होना चाहता है जिसके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है।”

11. इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, यह बहुत स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति उसी अपराध में अभिरक्षा में है जिसके लिए पूर्व-गिरफ्तारी जमानत मांगी गई है, तो अग्रिम जमानत पोषणीय नहीं होगी, पूर्व-गिरफ्तारी जमानत की स्थिरता पर प्रतिबंध, यदि कोई हो, केवल तभी होगा जब कोई व्यक्ति उस विशेष अपराध में अभिरक्षा में हो।

12. उपरोक्त घोषणाओं से दो बातें स्पष्ट हैं। पहली बात, दं.प्र.सं. या किसी भी कानून में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है जो सत्र या उच्च न्यायालय को अग्रिम जमानत पर विचार

करने और उस पर निर्णय लेने से रोकता है. जब ऐसा व्यक्ति पहले से ही किसी अन्य अपराध में न्यायिक या पुलिस अभिरक्षा में है। दूसरी बात, प्रतिबंध को किसी अन्य अपराध में की गई गिरफ्तारी तक नहीं बढ़ाया जा सकता क्योंकि यह प्रावधान के उद्देश्य के विरुद्ध होगा।

XXX XXX XXX

14. मैं यहाँ यह बताना चाहूँगा कि नरिंदरजीत सिंह साहनी व अन्य (पूर्वोक्त) का मामला अनुच्छेद 32 की स्थिरता के संबंध में था जिसमें धारा 438 की प्रकृति में राहत मांगी गई थी। यहाँ तक कि, उक्त निर्णय में यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है कि एक अपराध में गिरफ्तार किया गया व्यक्ति केवल इस आधार पर दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत किसी अन्य अपराध में दी गई राहत की माँग नहीं कर सकता कि वह किसी अन्य जिले के अपराध में गिरफ्तार है।

15. मेरी राय में, विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 438 की उचित व्याख्या नहीं की गई। अभियुक्त को पूरा अधिकार है, भले ही उसे कई मामलों में गिरफ्तार किया गया हो, उसके खिलाफ दर्ज प्रत्येक अपराध में आगे बढ़ने का, भले ही वह पहले से ही अभिरक्षा में हो, लेकिन अलग-अलग अपराध के लिए, क्योंकि आवेदन (आवेदनों) पर सुनवाई होगी और उस अपराध से स्वतंत्र गुणागुण के आधार पर निर्णय लिया जाएगा, जिसमें वह पहले से ही अभिरक्षा में है।

16. व्याख्या की आड में, किसी भी व्यक्ति को स्पष्ट और सरल विवरण के अलावा किसी भी अर्थ को प्रमाणित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए, भले ही वह विधि द्वारा प्रदान किया गया हो। जो नहीं कहा गया है, उसका अनुमान तब तक नहीं लगाया जा सकता जब तक कि प्रावधान स्वयं अटकलों के लिए जगह न दे। यदि इस के पीछे का उद्देश्य अस्पष्टता और संदिग्धता के बिना स्पष्ट है, तो अनुमान के लिए कोई जगह नहीं है।”

(जोर दिया गया)

14. संजय कुमार सारंगी बनाम ओडिशा राज्य में 2024 एससीसी ऑनलाइन ओरी 1334 में रिपोर्ट की गई, ओडिशा उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह विचार व्यक्त किया कि किसी मामले के संबंध में अभिरक्षा में लिए गए अभियुक्त के लिए उसके विरुद्ध दर्ज किसी अन्य मामले में अग्रिम जमानत देने हेतु प्रार्थना करने पर कोई वैधानिक रोक नहीं है। न्यायालय ने, प्रासंगिक प्रावधानों के अवलोकन के बाद, यह विचार व्यक्त किया कि गिरफ्तारी का अर्थ है न्यायालय के आदेश के साथ या उसके बिना किसी व्यक्ति को शारीरिक रूप से बंधक बनाना है। न्यायालय ने उल्लेख किया कि दं.प्र.सं. की धारा 167(2), जो 'रिमांड' को नियंत्रित करती है, ऐसे मामले पर लागू होती है जहां अभियुक्त को पहले ही गिरफ्तार किया जा चुका है, और आरोप-पत्र दायर नहीं किया गया है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि दं.प्र.सं. में ऐसा कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है जो ऐसी स्थिति को नियंत्रित करता हो जहां किसी व्यक्ति को किसी नए मामले के संबंध में गिरफ्तार/रिमांड पर लिया जाना आवश्यक हो, जबकि वह पहले से ही किसी अन्य मामले के संबंध में अभिरक्षा में है और ऐसी स्थिति में,

अभियुक्त को केवल सक्षम न्यायालय के आदेश पर नए मामले के संबंध में रिमांड पर लिया जा सकता है। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि क्या न्यायालय द्वारा रिमांड के ऐसे आदेश को गिरफ्तारी की कार्रवाई के बराबर माना जा सकता है, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि गिरफ्तारी के मामले में रिमांड का उद्देश्य जांच के दौरान साक्ष्य एकत्र करना है, और इस प्रकार दोनों एक ही बात है।

15. उच्च न्यायालय ने आगे बताया कि यदि किसी व्यक्ति के खिलाफ एक मामले के संबंध में पहले से ही अभिरक्षा में कोई नया मामला दर्ज किया जाता है, तो ऐसी परिस्थितियों में पुलिस या तो न्यायालय से रिमांड का आदेश मांग सकती है या अभियुक्त को गिरफ्तार कर सकती है, जब भी वह दूसरे मामले के संबंध में अभिरक्षा से रिहा होता है। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि केवल बाद के परिदृश्य में ही दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत का आदेश प्रभावी होगा क्योंकि अभियुक्त को अभिरक्षा से रिहा किए जाने के बाद ही उसे बाद के मामले के संबंध में गिरफ्तार किया जा सकता है। न्यायालय ने कहा कि अग्रिम जमानत भविष्य में भी लागू होती है। पूर्व मामले में अभिरक्षा से रिहा होने के बाद, यदि उसे बाद के मामले के संबंध में गिरफ्तार करने की मांग की जाती है, तो कोई कारण नहीं है कि उसे अग्रिम जमानत के रूप में आवश्यक सुरक्षा के साथ पहले से न्यायालय का दरवाजा खटखटाने से रोका जाये।
16. न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यदि कोई व्यक्ति किसी मामले के सिलसिले में पहले से ही अभिरक्षा में है तो उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है, हालांकि, किसी अन्य मामले के संबंध में अग्रिम जमानत प्राप्त करने के उसके अधिकार को दं.प्र.सं. की योजना के अनुसार सीमित नहीं किया जा सकता है। हालांकि, यदि अग्रिम जमानत दी

जाती है, तो वह तभी प्रभावी होगी जब उसे पिछले मामले में अभिरक्षा से रिहा होने के परिणामस्वरूप बाद के मामले के संबंध में गिरफ्तार किया जाता है।

17. अंत में, न्यायालय ने कहा कि दं.प्र.सं. में ऐसा कुछ भी नहीं है जो अभियुक्त के अपनी स्वतंत्रता की मांग करने या जांच एजेंसी के मामले की जांच करने के अधिकार को केवल इसलिए छीन लेता है क्योंकि अभियुक्त किसी अन्य मामले में अभिरक्षा में है। न्यायालय ने कहा कि अभियुक्त अग्रिम जमानत हेतु न्यायालय में जाने के अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है, ठीक उसी तरह जैसे जांच एजेंसी मामले पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय से अभियुक्त की रिमांड मांगकर बाद के मामले की जांच करने के अपने अधिकार का प्रयोग कर सकती है। दोनों अधिकार सह-अस्तित्व में रह सकते हैं और अपने-अपने और उचित समय पर काम कर सकते हैं। न्यायालय ने कहा कि यदि जांच एजेंसी द्वारा अभियुक्त की अभिरक्षा के दौरान उसे रिमांड पर लेने के आवेदन को स्वीकार कर लिया जाता है, तो अभियुक्त बाद के मामले में अग्रिम जमानत हेतु प्रार्थना नहीं कर सकता है, क्योंकि तब उसे तकनीकी रूप से बाद के मामले के संबंध में भी अभिरक्षा में कहा जा सकता है। ऐसे परिदृश्य में, अभियुक्त केवल नियमित जमानत मांग सकता है। न्यायालय ने आगे विस्तार से बताया कि अग्रिम जमानत दिए जाने से अभियुक्त को जांच से बचने या उससे किसी छूट का दावा करने का लाइसेंस नहीं मिल जाता है।
18. हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा की गई कुछ प्रासंगिक टिप्पणियों का उल्लेख कर सकते हैं:

“13. उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति किसी मामले के सिलसिले में अभिरक्षा में है और उसके खिलाफ किसी अन्य अपराध के लिए एक नया मामला दर्ज किया जाता है। ऐसी स्थिति में पुलिस के पास दो विकल्प उपलब्ध हैं - पहला, अगर जांच के लिए अभियुक्त की उपस्थिति की आवश्यकता है तो न्यायालय से रिमांड का आदेश मांगना या दूसरा, उसे गिरफ्तार करना, जब भी वह पिछले मामले के सिलसिले में अभिरक्षा से रिहा हो। यह केवल दूसरे परिदृश्य में ही है कि अग्रिम जमानत का आदेश प्रभावी हो सकता है क्योंकि तभी उसे 'गिरफ्तार' किया जा सकता है। यह साधारण कानून है कि अभिरक्षा जमानत और अग्रिम जमानत के मामले में आदेश के बीच अंतर यह है कि पहला तब पारित किया जाता है जब अभियुक्त पहले से ही गिरफ्तार है और अभिरक्षा में है और जैसे ही इसे पारित किया जाता है (जमानत बांड आदि जमा करने के अधीन), जबकि दूसरा भविष्य में लागू होता है-जब व्यक्ति अभिरक्षा में नहीं होता है, तो उसे गिरफ्तार किया जाता है। इस न्यायालय के सुविचारित दृष्टिकोण के अनुसार, यही इस मुद्दे का सार है। विस्तार से कहें तो, चूंकि अग्रिम जमानत देने वाला आदेश तभी प्रभावी होता है जब व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है और चूंकि पहले से अभिरक्षा में लिए गए व्यक्ति को गिरफ्तार करना संभव नहीं है, अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि जब उसे पहले मामले में अभिरक्षा से रिहा किया जाता है, तो उसे नए मामले में गिरफ्तार करने की मांग की जाती है, तो कोई कारण नहीं है कि उसे ऐसी

स्थिति से खुद को बचाने के लिए अग्रिम जमानत के रूप में आवश्यक सुरक्षा प्राप्त करने के लिए पहले से ही न्यायालय में जाने से रोका जाए। यदि न्यायालय द्वारा उसके पक्ष में ऐसा कोई आदेश पारित किया जाता है, तो यह तब प्रभावी होगा जब उसे गिरफ्तार किया जाएगा, जैसा कि सामान्यतः होता है। एकमात्र अड़चन यह है कि जब तक वह पहले उल्लेखित मामले में अभिरक्षा में है, तब तक उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। इसलिए, नए मामले में पहले से ही आदेश प्राप्त करने का उसका अधिकार जो पहले उल्लेखित मामले से उसकी रिहाई पर ही प्रभावी हो सकता है, संहिता की योजना के तहत अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

14. एक और पहलू पर भी विचार किया जाना चाहिए - जब कोई व्यक्ति किसी मामले के सिलसिले में अभिरक्षा में होता है और उसके खिलाफ एक नया मामला दर्ज होता है, तो यह सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए एक अलग मामला होता है। इसका मतलब है कि अभियुक्त के खिलाफ मामला दर्ज होने के बाद उसे कानून द्वारा दिए गए सभी अधिकार और जांच एजेंसी स्वतंत्र रूप से संरक्षित हैं। संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो अभियुक्त के अपनी स्वतंत्रता की मांग करने या जांच एजेंसी के मामले की जांच करने के अधिकार को केवल इसलिए छीन लेता है क्योंकि वह किसी अन्य मामले में अभिरक्षा में है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, अभियुक्त अग्रिम जमानत के लिए न्यायालय में जाने के अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है जो

निश्चित रूप से पहले के मामले से उसकी रिहाई और बाद के मामले में उसकी गिरफ्तारी की स्थिति में ही प्रभावी होगा। इसी तरह, जांच एजेंसी के बाद के मामले में जांच/पूछताछ करने के अधिकार का प्रयोग बाद के मामले में न्यायालय से अभियुक्त की रिमांड मांग कर किया जा सकता है। ये दोनों परिदृश्य परस्पर अनन्य नहीं हैं और अपने-अपने और उचित समय पर काम कर सकते हैं। जांच एजेंसी, अगर पूछताछ/जांच के उद्देश्य से आवश्यक समझती है तो वह अभियुक्त की रिमांड मांग सकती है। जबकि वह पिछले मामले के सिलसिले में अभिरक्षा में है और अगर ऐसी प्रार्थना को अनुमति दी जाती है, तो अभियुक्त अब अग्रिम जमानत हेतु प्रार्थना नहीं कर सकता है क्योंकि तब वह तकनीकी रूप से बाद के मामले के सिलसिले में भी अभिरक्षा में रहेगा। तब, वह केवल नियमित या अभिरक्षा जमानत ही मांग सकता है। यह भी विचारणीय है कि अगर अभियोजन पक्षकार के पास किसी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ मामला दर्ज करने का अधिकार है जो किसी अन्य मामले के सिलसिले में अभिरक्षा में है, तो ऐसे मामले में अभियुक्त को उसकी स्वतंत्रता की सुरक्षा मांगने के अधिकार से कैसे वंचित किया जा सकता है? यह संविधान के अनुच्छेद 21 और संहिता की धारा 438 में निहित मूल सिद्धांत के विरुद्ध होगा।

15. यह न्यायालय को राजस्थान उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सुनील कल्लानी (पूर्वोक्त) के मामले में अपनाए गए तर्क की ओर ले जाता है कि

".....संबंधित पुलिस जांच एजेंसी जहां प्राथमिकी दर्ज की गई है, उसे व्यक्तिगत जांच करने और वसूली करने से रोका जाएगा क्योंकि एक बार अग्रिम जमानत दिए जाने के बाद वह बिना किसी सीमा के काम करना जारी रखेगी जैसा कि सुशीला अग्रवाल, (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है...."

बहुत सम्मान के साथ, यह न्यायालय इस तथ्य के मद्देनजर ऊपर उद्धृत तर्क से सहमत होने में असमर्थ है कि अग्रिम जमानत देने से अभियुक्त को जांच से बचने का लाइसेंस नहीं मिलता है और न ही उसे जांच से बचने या उससे कोई छूट मिलती है। वास्तव में, धारा 438 की उपधारा (2) इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देती है:

(2) जब उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय उपधारा (1) के अधीन कोई निदेश देता है, तब वह विशिष्ट मामले के तथ्यों के प्रकाश में ऐसे निदेशों में ऐसी शर्तें सम्मिलित कर सकता है, जो वह ठीक समझे, जिनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं-

(i) यह शर्त है कि व्यक्ति आवश्यकता पड़ने पर पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ हेतु स्वयं को उपलब्ध कराएगा;

XXX XXX XXX

यह उल्लेख करना अनावश्यक है कि उपधारा (1) के तहत आदेश केवल लोक अभियोजक की सुनवाई के बाद ही पारित

किया जा सकता है। अतः, अभियोजन पक्षकार हमेशा अग्रिम जमानत देने वाले आदेश में न्यायालय द्वारा ऐसी शर्त शामिल करने पर जोर दे सकता है। और जहां तक 'प्रत्युद्धरण' का प्रश्न है, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, जांच एजेंसी के लिए हमेशा यह स्वतंत्रता रहती है कि वह अभियुक्त को रिमांड पर ले, जब तक कि वह अभिरक्षा में है, इस उद्देश्य हेतु और अग्रिम जमानत देने वाला आदेश पारित नहीं किया गया है। [...]

XXX

XXX

XXX

17. इस प्रकार पूर्व में किए गए विश्लेषण के आधार पर, यह न्यायालय इस प्रकार निर्णय देता है:

(i) किसी मामले के सिलसिले में अभिरक्षा में लिए गए अभियुक्त के लिए उसके खिलाफ दर्ज किसी अन्य मामले में अग्रिम जमानत देने की प्रार्थना करने पर कोई वैधानिक रोक नहीं है;

(ii) यदि अग्रिम जमानत दी जाती है, तो वह केवल तभी प्रभावी होगी जब उसे पिछले मामले में अभिरक्षा से रिहा होने के परिणामस्वरूप बाद के मामले के संबंध में गिरफ्तार किया जाता है।

(iii) जांच एजेंसी, यदि पूछताछ/जांच के उद्देश्य से आवश्यक समझती है, तो अभियुक्त की रिमांड मांग सकती है, जबकि वह पिछले मामले के संबंध में अभिरक्षा में है और जिसमें अग्रिम जमानत देने का कोई आदेश अभी तक पारित नहीं हुआ है। यदि रिमांड देने का ऐसा आदेश पारित

हो जाता है, तो अभियुक्त के लिए अग्रिम जमानत मांगना अब स्वतंत्र नहीं रहेगा, बल्कि वह नियमित जमानत मांग सकता है।

18. वर्तमान मामलों में अभियोजन पक्षकार ने याचिकाकर्ताओं के खिलाफ दर्ज बाद के मामलों में उन्हें रिमांड पर लेने के लिए न्यायालय से कोई आदेश नहीं मांगा है और न ही प्राप्त किया है। इस प्रकार, यह न्यायालय मानता है कि अग्रिम जमानत आवेदन विचारणीय हैं..."

(जोर दिया गया)

19. इस प्रकार, उपर्युक्त चर्चा से यह प्रतीत होता है कि देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा अलग-अलग राय व्यक्त की गई है। राजस्थान, दिल्ली और इलाहाबाद उच्च न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि अभियुक्त पहले से ही गिरफ्तार है और किसी अपराध के सिलसिले में अभिरक्षा में है तो अग्रिम जमानत आवेदन स्वीकार्य नहीं होगा। दूसरी ओर, बॉम्बे और उड़ीसा उच्च न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि भले ही अभियुक्त एक मामले के सिलसिले में अभिरक्षा में हो, लेकिन किसी अन्य मामले के सिलसिले में उसके कहने पर अग्रिम जमानत आवेदन स्वीकार्य है।

घ. विश्लेषण

i. अग्रिम जमानत की अवधारणा का विकास

20. दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (संक्षेप में, "संहिता 1898") में दं.प्र.सं. की धारा 438 के समान कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं था। **अमीर चंद बनाम क्राउन 1949 एससीसी ऑनलाइन पंज 20** में रिपोर्ट की गई, पूर्ण

न्यायपीठ के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या संहिता 1898 की धारा 498 उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को किसी ऐसे व्यक्ति को जमानत देने का अधिकार देती है जिसे गिरफ्तारी या अन्यथा द्वारा प्रतिबंधित नहीं किया गया हो। पूर्ण न्यायपीठ ने संदर्भ का उत्तर इस प्रकार दिया:

"... जमानत की अवधारणा में ही किसी प्रकार के पूर्व प्रतिबंध की पूर्वधारणा है। अतः, ऐसे व्यक्ति को जमानत नहीं दी जा सकती जिसे गिरफ्तार नहीं किया गया है और जिसकी गिरफ्तारी के लिए कोई वारंट जारी नहीं किया गया है। धारा 498, दंड प्रक्रिया संहिता, उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को किसी ऐसे व्यक्ति को जमानत देने की अनुमति नहीं देती जिसका मामला धारा 496 और 497, दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत नहीं आता है। इसलिए, यह निष्कर्ष निकलता है कि जमानत केवल उसी व्यक्ति को दी जा सकती है जिसे बिना वारंट के गिरफ्तार या अभिरक्षा में लिया गया हो या जो न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो या लाया गया हो। ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाना चाहिए और जमानत के प्रश्न पर विचार किए जाने से पहले उसे आत्मसमर्पण करना चाहिए। ऐसे व्यक्ति के मामले में जो गिरफ्तार नहीं हैं, लेकिन जिसके लिए गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया है, उसे जमानत दी जा सकती है यदि वह न्यायालय में उपस्थित होकर आत्मसमर्पण कर दे। ऐसे व्यक्ति को जमानत नहीं दी जा सकती जो स्वतंत्र है और जिसकी गिरफ्तारी के लिए कोई वारंट जारी नहीं किया गया है। इसलिए, वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता जमानत के

हकदार नहीं हैं। अतः, पूर्ण न्यायपीठ को संदर्भित प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है।"

(जोर दिया गया)

21. संहिता 1898 के तहत, अग्रिम या पूर्व-गिरफ्तारी जमानत की अवधारणा अनुपस्थित थी तथा अग्रिम जमानत देने के लिए उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को सशक्त बनाने के लिए दं.प्र.सं. में एक नया प्रावधान शुरू करने की आवश्यकता को भारत के 41वें विधि आयोग ने दिनांक 24 सितंबर, 1969 की अपनी रिपोर्ट में इंगित किया था। इसने उक्त रिपोर्ट (खंड I) के पैरा 39.9 में इस प्रकार टिप्पणी की:

"अग्रिम जमानत

39.9 किसी व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी से पहले जमानत पर रिहा करने का निर्देश देने के सुझाव (जिसे आमतौर पर "अग्रिम जमानत" के रूप में जाना जाता है) पर हमने सावधानीपूर्वक विचार किया। हालाँकि अग्रिम जमानत देने की न्यायालय की शक्ति के बारे में न्यायिक राय में टकराव है, लेकिन बहुमत का मानना है कि संहिता के मौजूदा प्रावधानों के तहत ऐसी कोई शक्ति नहीं है। अग्रिम जमानत देने की जरूरत मुख्य रूप से इसलिए पड़ती है क्योंकि कभी-कभी प्रभावशाली व्यक्ति अपने प्रतिद्वंद्वियों को बदनाम करने या अन्य उद्देश्यों हेतु कुछ दिनों के लिए जेल में बंद करके उन्हें झूठे मामलों में फँसाने की कोशिश करते हैं। हाल के दिनों में, राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के बढ़ने से, इस प्रवृत्ति में लगातार वृद्धि के संकेत मिल रहे हैं। झूठे मामलों के अलावा, जहाँ यह मानने के लिए उचित आधार है कि

किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के फरार होने या जमानत पर रहते हुए अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने की संभावना नहीं है, वहाँ उसे पहले अभिरक्षा में लेने, कुछ दिनों के लिए जेल में रहने और फिर जमानत के लिए आवेदन करने की आवश्यकता नहीं लगती है।

हम इस सुझाव को स्वीकार करने की अनुशंसा करते हैं। हमारा यह भी मानना है कि यह विशेष शक्ति केवल उच्च न्यायालय एवं सत्र न्यायालय को ही दी जानी चाहिए, तथा यह आदेश गिरफ्तारी के समय या उसके बाद प्रभावी होना चाहिए।

इस सुझाव के विवरण को तय करने के लिए, एक नए खंड का निम्नलिखित मसौदा विचारार्थ रखा गया है:

‘497-क. (1) जब किसी व्यक्ति को यह उचित आशंका हो कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जाएगा, तो वह इस धारा के तहत निर्देश के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में आवेदन कर सकता है। वह न्यायालय अपने विवेकानुसार निर्देश दे सकता है कि उसकी गिरफ्तारी की स्थिति में उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा।

(2) उस व्यक्ति के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लेने वाला मजिस्ट्रेट धारा 204(1) के अधीन कार्रवाई करते समय उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निर्देशानुसार या तो समन या जमानतीय वारंट जारी करेगा।

(3) यदि कोई व्यक्ति, जिसके संबंध में ऐसा निर्देश दिया गया है, किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा उस अपराध को करने के आरोप पर बिना वारंट के गिरफ्तार किया जाता है, और वह गिरफ्तारी के समय या ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में रहते हुए किसी भी समय जमानत देने के लिए तैयार है, तो ऐसे व्यक्ति को जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा।'

हमने कानून में कुछ ऐसी शर्तें तय करने के सवाल पर ध्यानपूर्वक विचार किया, जिनके तहत ही अग्रिम जमानत दी जा सकती है। लेकिन हमने पाया कि उन शर्तों को पूरी तरह से गिनाना व्यावहारिक नहीं हो सकता है; और इसके अलावा, ऐसी शर्तें तय करना पूरे मामले को (किसी भी दर पर आंशिक रूप से) पूर्वाग्रहित करने के रूप में समझा जा सकता है। अतः हम इसे न्यायालय के विवेक पर छोड़ देंगे और वैधानिक प्रावधान में ऐसे विवेक को बाधित करना पसंद नहीं करेंगे। निस्संदेह, उच्च न्यायालय अपने विवेक का उचित उपयोग करेंगे, तथा अग्रिम जमानत देने वाले आदेश में कोई भी टिप्पणी नहीं करेंगे, जिससे अभियुक्त की निष्पक्ष सुनवाई पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की प्रवृत्ति हो।”

(जोर दिया गया)

22. विधि आयोग द्वारा दिए गए सुझाव को केंद्र सरकार ने सैद्धांतिक रूप से स्वीकार कर लिया, जिसने दंड प्रक्रिया संहिता, 1970 के मसौदा विधेयक में धारा 447 को शामिल किया, ताकि उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को अग्रिम जमानत देने का स्पष्ट अधिकार दिया जा

सके। मसौदा विधेयक के उक्त खंड को कुछ संशोधनों के साथ अधिनियमित किया गया और यह दं.प्र.सं. की धारा 438 बन गई।

23. विधि आयोग ने अपनी 48वीं रिपोर्ट (1972) के पैराग्राफ 31 में उपर्युक्त खंड पर निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

"विधेयक में अग्रिम जमानत देने का प्रावधान पेश किया गया है। यह काफी हद तक पिछले आयोग द्वारा की गई सिफारिश के अनुरूप है। हम इस बात से सहमत हैं कि यह एक उपयोगी अतिरिक्त होगा, हालांकि हमें यह भी जोड़ना होगा कि बहुत ही असाधारण मामलों में इस तरह की शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

हमारा यह भी मानना है कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रावधान का दुरुपयोग बेईमान याचीगण के कहने पर न हो, अंतिम आदेश लोक अभियोजक को नोटिस देने के बाद ही दिया जाना चाहिए। प्रारंभिक आदेश केवल अंतरिम होना चाहिए। इसके अलावा, संबंधित धारा में यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि निर्देश केवल दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए ही जारी किया जा सकता है, और यदि न्यायालय को लगता है कि न्याय के हित में ऐसा निर्देश आवश्यक है।

यह भी सुविधाजनक होगा कि अंतरिम आदेश के साथ-साथ अंतिम आदेश की सूचना भी पुलिस अधीक्षक को तत्काल दे दी जाएगी।"

(जोर दिया गया)

24. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 इस प्रकार है:

गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने का विवेकाधिकार- (1) जहां किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण है कि उसे अजमानतीय अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, वह इस धारा के अधीन निर्देश हेतु उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में आवेदन कर सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाए; तथा वह न्यायालय, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित बातों पर विचार करने के पश्चात्, अर्थात्:---

(i) आरोप की प्रकृति एवं गंभीरता;

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त, जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि क्या उसने पहले किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास भोगा है;

(iii) आवेदक के न्याय से भागने की संभावना; और

(iv) जहां आरोप आवेदक को गिरफ्तार करके उसे चोट पहुंचाने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाया गया हो, या तो आवेदन को तत्काल खारिज कर दें या अग्रिम जमानत देने के लिए अंतरिम आदेश जारी करें:

परंतु जहां, यथास्थिति, उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय ने इस उपधारा के अधीन कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत मंजूर करने हेतु आवेदन को अस्वीकृत कर दिया है, वहां पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी ऐसे आवेदन में लगाए गए आरोप के आधार पर

आवेदक को बिना वारंट के गिरफ्तार करने के लिए स्वतंत्र होगा।

(1(क) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन अंतरिम आदेश देता है, वहां वह लोक अभियोजक एवं पुलिस अधीक्षक को कम से कम सात दिन का नोटिस तथा ऐसे आदेश की एक प्रति तुरन्त तामील कराएगा, ताकि न्यायालय द्वारा आवेदन पर अंतिम रूप से सुनवाई किए जाने के समय लोक अभियोजक को सुनवाई का उचित अवसर मिल सके।

(1ख) अग्रिम जमानत चाहने वाले आवेदक की उपस्थिति आवेदन की अंतिम सुनवाई के समय और न्यायालय द्वारा अंतिम आदेश पारित करने के समय अनिवार्य होगी, यदि लोक अभियोजक द्वारा किए गए आवेदन पर न्यायालय न्याय के हित में ऐसी उपस्थिति को आवश्यक समझता है।

(2) जब उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय उपधारा (1) के अधीन कोई निर्देश देता है, तब वह विशिष्ट मामले के तथ्यों के प्रकाश में ऐसे निदेशों में ऐसी शर्तें सम्मिलित कर सकता है, जो वह ठीक समझे, जिनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं--

(i) यह शर्त है कि व्यक्ति आवश्यकता पड़ने पर पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ हेतु स्वयं को उपलब्ध कराएगा;

(ii) यह शर्त कि व्यक्ति मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा जिससे कि वह ऐसे तथ्यों को

न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष प्रकट करने से विमुख हो जाए;

(iii) यह शर्त कि व्यक्ति न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा।

(iv) ऐसी अन्य शर्त जो धारा 437 की उपधारा (3) के अधीन लगाई जा सकेगी, मानो जमानत उस धारा के अधीन दी गई हो।

(3) यदि ऐसे व्यक्ति को तत्पश्चात् ऐसे अभियोग पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा बिना वारंट के गिरफ्तार किया जाता है और वह गिरफ्तारी के समय या ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में रहते हुए किसी भी समय जमानत देने के लिए तैयार हो जाता है, तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा; और यदि ऐसे अपराध का संज्ञान लेने वाला मजिस्ट्रेट यह विनिश्चय करता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध प्रथमतः वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निदेश के अनुरूप जमानतीय वारंट जारी करेगा।

(4) इस धारा की कोई भी बात भारतीय दंड संहिता (1860/45) की धारा 376 की उपधारा (3) या धारा 376कख या धारा 376घक या धारा 376घख के अधीन अपराध करने के आरोप पर किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी से संबंधित किसी मामले पर लागू नहीं होगी।

25. दं.प्र.सं. में धारा 438 को शामिल करने के लिए विधेयक के साथ दिए गए उद्देश्यों और कारणों के विवरण से पता चलता है कि विधानमंडल

ने महसूस किया कि एक ऐसा उपकरण विकसित करना जरूरी है जिसके द्वारा एक कथित अभियुक्त को प्रभावशाली लोगों के कहने पर बदनामी और अपमान का सामना करने के लिए मजबूर न होना पड़े जो अपने प्रतिद्वंद्वियों को झूठे मामलों में फंसाने की कोशिश करते हैं। दं.प्र.सं. में धारा 438 को शामिल करने के पीछे उद्देश्य एक स्वतंत्र और लोकतांत्रिक देश में व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं आजादी के महत्व को पहचानना था। इस खंड को ध्यान से पढ़ने से पता चलता है कि विधानमंडल व्यक्तियों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सम्मान को सुनिश्चित करने के लिए उत्सुक था, जो कि सदियों पुराने सिद्धांत को लागू करता है कि किसी व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि उसे न्यायालय द्वारा दोषी नहीं ठहराया जाता है। [देखें: सिद्धराम सतलिंगप्पा महेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य (2011) 1 एससीसी 694 में रिपोर्ट किया गया]।

26. अग्रिम जमानत के संदर्भ में, इस न्यायालय ने सिद्धराम सतलिंगप्पा महेत्रे (पूर्वोक्त) में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की प्रासंगिकता और महत्व पर निम्नानुसार चर्चा की:

“36. सभी मनुष्य जीवन, स्वतंत्रता एवं प्रसन्नता जैसे कुछ अविभाज्य अधिकारों के साथ पैदा होते हैं। इन प्राकृतिक अधिकारों का महत्व इस तथ्य में पाया जा सकता है कि ये उनके उचित अस्तित्व के लिए मौलिक हैं और जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार की उपस्थिति के बिना किसी अन्य अधिकार का आनंद नहीं लिया जा सकता है। स्वतंत्रता से रहित जीवन सम्मान एवं गरिमा के बिना होगा और यह सभी महत्व तथा अर्थ खो देगा और जीवन स्वयं जीने

लायक नहीं होगा। अतः "स्वतंत्रता" को सभ्य अस्तित्व का सार कहा जाता है।

37. "स्वतंत्रता" की उत्पत्ति प्राचीन यूनानी सभ्यता में देखी जा सकती है। यूनानियों ने समूह की स्वतंत्रता और व्यक्ति की स्वतंत्रता के बीच अंतर किया। 431 ईसा पूर्व में, एक एथेनियन राजनेता ने बताया कि स्वतंत्रता की अवधारणा दो धारणाओं का परिणाम थी, पहला, समूह को हमले से बचाना और दूसरा, समूह की महत्वाकांक्षा मानवीय तर्क के माध्यम से व्यक्ति के आत्म-साक्षात्कार के माध्यम से खुद को यथासंभव पूर्ण रूप से साकार करना। यूनानियों ने अपनी स्वतंत्रता की रक्षा का कर्तव्य राज्य को सौंपा। अरस्तू के अनुसार, चूंकि राज्य मानव प्रकृति की कुछ मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने का एक साधन था और साथी नागरिकों के सहयोग से व्यक्तियों के व्यक्तित्व के विकास का एक साधन था, इसलिए यह मनुष्य के लिए स्वाभाविक और आवश्यक था। प्लेटो ने अपने "गणतंत्र" को लोगों के आत्म-साक्षात्कार की उपलब्धि के लिए सबसे अच्छा स्रोत पाया।

XXX XXX XXX

43. भारत के एक प्रतिष्ठित पूर्व भारत के महान्यायवादी, एम.सी. सीतलवाड़ ने अपने ग्रंथ वार एंड सिविल लिबर्टीज में कहा कि फ्रांसीसी सम्मेलन समाज के लक्ष्य के रूप में आम खुशी (कॉमन हैप्पीनेस) को निर्धारित करता है, जबकि बेंथम कानून के लक्ष्य के रूप में सबसे बड़ी संख्या के सबसे

बड़े सुख को मानते हैं। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19 स्वतंत्रता से अलग है तथा इसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बारे में कुछ अधिकारों का उल्लेख किया गया है। ये अधिकार महत्वपूर्ण और सबसे महत्वपूर्ण स्वतंत्रताएं हैं जो स्वतंत्रता के मूल में निहित हैं। उन्होंने आगे कहा कि नागरिक स्वतंत्रता की अवधारणा अनिवार्य रूप से व्यक्तिवाद के दर्शन में निहित है। इस सिद्धांत के अनुसार, व्यक्ति का उच्चतम विकास और उसके व्यक्तित्व का संवर्धन ही राज्य का वास्तविक कार्य और लक्ष्य है। जब व्यक्ति पूर्णता की उच्चतम अवस्था तक पहुँच जाता है और अपने भीतर जो सबसे अच्छा है उसे विकसित कर लेता है, तभी समाज और राज्य पूर्णता के अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। संक्षेप में, इस सिद्धांत के अनुसार, राज्य मुख्य रूप से, यदि पूरी तरह से नहीं, तो व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रदान करने और उसके विकास और पूर्णता की प्राप्ति के लिए सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से मौजूद है। राज्य व्यक्ति के लाभ के लिए मौजूद है।

XXX XXX XXX

49. एक प्रख्यात अंग्रेज न्यायाधीश, लॉर्ड अल्फ्रेड डेनिंग ने कहा:

"व्यक्तिगत स्वतंत्रता से मेरा तात्पर्य प्रत्येक कानून का पालन करने वाले नागरिक की स्वतंत्रता से है कि वह जो चाहे सोचे, जो चाहे कहे, तथा बिना किसी व्यक्ति की बाधा के अपने

वैध अवसर पर जहां चाहे जाए....निःसंदेह, इसे सामाजिक सुरक्षा के साथ जोड़ा जाना चाहिए, जिससे मेरा तात्पर्य उस समुदाय की शांति और अच्छी व्यवस्था से है जिसमें हम रहते हैं।"

50. इस न्यायालय के एक प्रतिष्ठित पूर्व न्यायाधीश, न्यायमूर्ति एच.आर. खन्ना ने 2 आईजेआईएल, खंड 18 (1978), पृष्ठ 133 में प्रकाशित एक भाषण में कहा कि

"...स्वतंत्रता एक ऐसे वातावरण के निर्माण की परिकल्पना करती है जिसमें मानव आत्माओं का दमन नहीं होता, जिसमें मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के अवसर से इनकार नहीं किया जाता, जिसमें सिर ऊंचा रखा जाता है और मानव मन की दासता या मानव शरीर की गुलामी नहीं होती है।"

27. **करतार सिंह** (पूर्वोक्त) मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि अग्रिम जमानत मांगने का कोई संवैधानिक या मौलिक अधिकार नहीं है। उक्त मामले में, इस न्यायालय को आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम, 1987 की धारा 20 की उपधारा (7) की संवैधानिक वैधता पर विचार करने के लिए कहा गया था। संविधान न्यायपीठ ने दंड प्रक्रिया संहिता (उ.प्र. संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 9 की वैधता पर भी विचार किया, जिसने दिनांक 28.11.1975 से उत्तर प्रदेश राज्य में दं.प्र.सं. की धारा 438 के संचालन को समाप्त कर दिया था। उपर्युक्त संदर्भ में,

न्यायमूर्ति रत्नावेल पांडियन ने स्वयं व चार अन्य न्यायाधीशों की ओर से बोलते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की:

“326. पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने बिमल कौर [एआईआर 1988 पी एंड एच 95 : (1988) 93 पंज एलआर 189 : 1988 आप. एलजे 169] में टाडा अधिनियम की धारा 20(7) की वैधता के संबंध में इसी तरह की चुनौती की जांच की है, एवं इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है:

"मेरी राय में धारा 20(7) संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधानों के अंतर्गत आती है, जिसमें आतंकवादी कृत्य करने के लिए आरोपित व्यक्ति उस श्रेणी में आते हैं जो दंड संहिता के तहत अपराध करने के लिए आरोपित व्यक्तियों की श्रेणी और अन्य कानूनों द्वारा बनाए गए अपराधों से अलग है। आतंकवादी कृत्य में लिप्त व्यक्ति अच्छी तरह से संगठित गुप्त गतिविधियों के सदस्य होते हैं। प्रवर्तन एजेंसियों को उन तक पहुँचना मुश्किल लगता है। जब तक पुलिस इस बात का सुराग प्राप्त करने में सक्षम नहीं हो जाती कि इस गतिविधि के पीछे कौन लोग हैं, यह कैसे संगठित है, इसके सक्रिय सदस्य कौन हैं और वे कैसे काम करते हैं, तब तक वह इस गतिविधि को समाप्त करने और सार्वजनिक व्यवस्था को बहाल करने की उम्मीद नहीं कर सकती है। पुलिस प्रभावी पूछताछ के बाद

गिरफ्तार आतंकवादियों से ही यह जानकारी प्राप्त कर सकती है। अगर गिरफ्तारी की आशंका वाले असली अपराधी अग्रिम जमानत प्राप्त करने में सक्षम हो जाते हैं तो पुलिस को उक्त अवसर से वंचित कर दिया जाएगा।"

327. इस बात पर जोर देना अनावश्यक है कि संसद और राज्य विधानसभाओं दोनों को दंड प्रक्रिया संहिता से संबंधित कोई भी कानून बनाने की विधायी क्षमता प्राप्त है। पुरानी संहिता में अग्रिम जमानत से संबंधित कोई प्रावधान नहीं था और इसे विधि आयोग की इकतालीसवीं रिपोर्ट और संयुक्त समिति की रिपोर्ट के सुझाव पर वर्ष 1973 की वर्तमान संहिता में पहली बार पेश किया गया था। यह ध्यान देने योग्य है कि उत्तर प्रदेश राज्य में दंड प्रक्रिया संहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, 1976 (उ.प्र. अधिनियम सं. 1976/16) की धारा 9 द्वारा दिनांक 28-11-1975 से इस धारा को पूरी तरह से हटा दिया गया है। पश्चिम बंगाल राज्य में संहिता की धारा 438(1) में दिनांक 15-11-1975 से प्रावधान डाला गया है। दिनांक 24-12-1988 को इस आशय का एक आदेश पारित किया गया था कि मृत्यु, आजीवन कारावास या कम से कम सात वर्ष की अवधि के कारावास से दंडनीय किसी अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत हेतु प्रार्थना करने वाले अभियुक्त द्वारा दायर आवेदन पर राज्य को अपना मामला प्रस्तुत करने के लिए कम से कम सात दिन का नोटिस दिए बिना कोई अंतिम आदेश नहीं किया जाएगा। उड़ीसा राज्य में, दिनांक 28-6

1988 से प्रभावी उड़ीसा अधिनियम 11/1988 की धारा 2 द्वारा, धारा 438 में एक प्रावधान जोड़ा गया है जिसमें कहा गया है कि मृत्यु, आजीवन कारावास या कम से कम सात वर्ष की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध हेतु राज्य को अपना मामला प्रस्तुत करने के लिए नोटिस दिए बिना अग्रिम जमानत के लिए आवेदन पर कोई अंतिम आदेश नहीं किया जाएगा।

XXX XXX XXX

329. इसके अलावा, दोहराव के जोखिम पर, हम यह जोड़ सकते हैं कि धारा 438 वर्तमान संहिता में शामिल एक नया प्रावधान है जो एक नया अधिकार बनाता है। यदि वह नया अधिकार छीन लिया जाता है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि धारा 438 को हटाना अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। गुरबख्श सिंह [(1980) 2 एससीसी 565 : 1980 एससीसी (आप.) 465 : (1980) 3 एससीआर 383] में, ऐसा कोई विशेष कथन नहीं है कि किसी भी समय धारा 438 को हटाना संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा।

(जोर दिया गया)

28. इस मामले की सुनवाई के दौरान उपरोक्त निर्णय पर इस सीमित प्रस्ताव के लिए चर्चा की गई कि अग्रिम जमानत मांगने का कोई संवैधानिक या मौलिक अधिकार नहीं है। दं.प्र.सं. की धारा 438 केवल एक वैधानिक अधिकार है।
29. गुरबख्श सिंह सिब्बिया (पूर्वोक्त) मामले में, इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने (तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति वाई.वी. चंद्रचूड़ के

माध्यम से बोलते हुए) अग्रिम जमानत के प्रावधान का व्यापक विश्लेषण किया। संविधान न्यायपीठ के इस निर्णय को इस बात पर एक गहन एवं भावुक आलेख कहा जा सकता है कि संविधान के तहत व्यक्तिगत स्वतंत्रता किस तरह जांच की जरूरतों के अनुरूप हो सकती है और इस न्यायालय को किसी भी ऐसे सामान्यीकरण से क्यों बचना चाहिए जो प्रत्येक मामले में तथ्यों का निपटान करने वाले न्यायालयों के विवेक को छीन ले। मुख्य न्यायाधीश वाई.वी. चंद्रचूड़ ने इस प्रकार टिप्पणी की:

“8. [...] ऐसी जांचों के साथ, जब पुलिस अपने कर्तव्य के दायरे में स्वतंत्र एजेंट नहीं होती है, तो बहुत अधिक असुविधा, उत्पीड़न और अपमान होता है। यह किसी सम्मानित व्यक्ति को हथकड़ी में बांधकर परेड करने का रूप भी ले सकता है, जाहिर तौर पर न्यायालय की ओर ले जाते हुए। यह त्रुटिपूर्ण कार्य तब किया जाता है जब किसी विरोधी को सामाजिक उपहास और बदनामी का सामना करना पड़ता है, चाहे उसे कब और कैसे भी सजा मिले या संभव हो। ऐसी स्थितियों से निपटान हेतु, हालांकि इन आकस्मिकताओं तक सीमित नहीं है, संहिता 1973 में अग्रिम जमानत देने की शक्ति पेश की गई थी।

XXX XXX XXX

12. [...] विधानमंडल ने अग्रिम जमानत देने के लिए उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को व्यापक विवेकाधिकार प्रदान किया क्योंकि यह स्पष्ट रूप से महसूस करता था कि, सबसे पहले, उन शर्तों को गिनना मुश्किल होगा जिनके

तहत अग्रिम जमानत दी जानी चाहिए या नहीं दी जानी चाहिए और दूसरी बात, क्योंकि उद्देश्य उच्च न्यायालयों को अग्रिम जमानत की प्रकृति में राहत देने में कुछ हद तक स्वतंत्र हाथ देने का था। यही कारण है कि धारा 437 और 439 की शर्तों से हटकर, धारा 438 (1) उस भाषा का उपयोग करती है जिसके अनुसार उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय "यदि वह उचित समझे" तो आवेदक को जमानत पर रिहा करने का निर्देश दे सकता है। धारा 438 की उप-धारा (2) अग्रिम जमानत देने के लिए व्यापक विवेकाधिकार शक्ति प्रदान करने के उसी विधायी उद्देश्य का एक और स्पष्ट प्रकटीकरण है। इसमें प्रावधान है कि उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय अग्रिम जमानत देने के लिए निर्देश जारी करते समय, "विशेष मामले के तथ्यों के आलोक में ऐसे निर्देशों में ऐसी शर्तें शामिल कर सकता है, जैसा वह ठीक समझे", जिसमें उपधारा (2) के खंड (i) से (iv) में निर्धारित शर्तें भी शामिल हैं।

XXX XXX XXX

14. विवेकाधिकार पर आधारित मामलों पर सामान्यीकरण और जब तथ्य मामले दर मामले अलग-अलग होने ही चाहिए, तो सार्वभौमिक अनुप्रयोग के सूत्र खोजने का प्रयास विवेक प्रदान करने के मूल उद्देश्य को ही विफल कर देता है। तथ्यों के आधार पर कोई भी दो मामले एक जैसे नहीं होते और इसलिये, यदि विवेकाधिकार प्रदान करना सार्थक होना है, तो न्यायालयों को संधि में थोड़ी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। अग्रिम जमानत देने में सत्र न्यायालय व उच्च

न्यायालय को व्यापक विवेक सौंपने में कोई जोखिम शामिल नहीं है, क्योंकि, सबसे पहले, ये अनुभवी व्यक्तियों द्वारा संचालित उच्च न्यायालय हैं, दूसरे, उनके आदेश अंतिम नहीं हैं, बल्कि अपील या पुनरीक्षण जांच हेतु स्वतंत्र हैं और सबसे बढ़कर, न्यायालयों द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग हमेशा न्यायिक रूप से किया जाना चाहिए, न कि मनमौजीपन, सनक या कल्पना के अनुसार किया जाना चाहिए। दूसरी ओर, उन मामलों की श्रेणियों को बंद करने में जोखिम है जिनमें अग्रिम जमानत दी जा सकती है, क्योंकि जीवन अप्रत्याशित संभावनाओं को जन्म देता है और नई चुनौतियां पेश करता है। न्यायिक विवेकाधिकार इतना स्वतंत्र होना चाहिए कि वह इन संभावनाओं को अपने में शामिल कर सके और इन चुनौतियों का सामना कर सके।

15. [...] अग्रिम जमानत देने जैसे मामले में कड़े नियम बनाते समय, जैसा कि उच्च न्यायालय ने किया है, यह अनदेखा किया जाना उचित है कि न्यायाधीशों को भी नई परिस्थितियों की ज़रूरतों के बारे में अपूर्ण जानकारी हो सकती है। जीवन कभी स्थिर नहीं रहता और हर परिस्थिति का आकलन उभरती चिंताओं के संदर्भ में किया जाना चाहिए।”

30. अग्रिम जमानत प्राप्त करने के लिए 'विशेष मामला' बनाने के संबंध में, इस न्यायालय ने गुरबखश सिंह सिब्बिया (पूर्वोक्त) में कहा:

“21. [...] न्यायिक शक्ति का बुद्धिमानी से किया गया प्रयोग अनिवार्य रूप से उन बुरे परिणामों का ध्यान रखता है जो इसके असंयमित उपयोग से उत्पन्न होने की संभावना है। हर तरह के न्यायिक विवेक का उपयोग, चाहे वह मामला किसी भी तरह का क्यों न हो जिसके लिए इसका प्रयोग किया जाना आवश्यक है, उचित सावधानी और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए। वास्तव में, जिस संदर्भ में विवेक का प्रयोग किया जाना आवश्यक है, उसके बारे में जागरूकता और इसके उपयोग के उचित रूप से पूर्वानुमानित परिणामों के बारे में जानकारी, न्यायिक विवेक के विवेकपूर्ण प्रयोग की पहचान है। किसी को अग्रिम जमानत देने की शक्ति का डर नहीं होना चाहिए।

XXX XXX XXX

27. [...] एक अभियुक्त व्यक्ति जो स्वतंत्रता का आनंद लेता है, वह अपने मामले की देखभाल करने और खुद का उचित बचाव करने की स्थिति में बेहतर होता है, बजाय इसके कि वह अभिरक्षा में हो। एक संभावित रूप से निर्दोष व्यक्ति के रूप में वह स्वतंत्रता और अपने मामले की देखभाल करने के प्रत्येक अवसर का हकदार है। एक संभावित रूप से निर्दोष व्यक्ति को अपनी बेगुनाही साबित करने में सक्षम होने के लिए स्वतंत्रता होनी चाहिए।”

31. [गुरबख्श सिंह सिब्बिया](#) (पूर्वोक्त) में, इस न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि आवेदक के पास विश्वास करने के लिए ठोस कारण होना चाहिए। अस्पष्ट आशंका काम नहीं आएगी। दूसरे, इसने अभिनिर्धारित

किया कि उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को आवेदक को दं.प्र.सं. की धारा 437 के तहत अपनी किस्मत आजमाने के लिए मजिस्ट्रेट के सामने जाने के लिए नहीं कहना चाहिए। यह भी देखा गया कि एक बार अभियुक्त को गिरफ्तार कर लिया जाता है, तो दं.प्र.सं. की धारा 438 उस अपराध या अपराधों के संदर्भ में कोई भूमिका नहीं निभाती है जिसके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है। इस न्यायालय ने अग्रिम जमानत के लिए एक व्यापक आदेश पारित करने के खिलाफ भी चेतावनी दी थी।

32. अग्रिम जमानत प्रदान करने के संबंध में कानून के निम्नलिखित सिद्धांतों को गुरबख्श सिंह सिब्बिया (पूर्वोक्त) से समझा जा सकता है:

- i. आवेदक को वास्तव में यह "विश्वास करने का कारण" दिखाना चाहिए कि उसे गैर-जमानती अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है। केवल भय ही विश्वास नहीं है और आवेदक का विश्वास जिस आधार पर आधारित है, उसे न्यायालय द्वारा निष्पक्ष रूप से जांचा जाना चाहिए। न्यायालय को विश्वास की तर्कसंगतता या गिरफ्तारी की संभावना का न्याय करने में सक्षम बनाने के लिए विशिष्ट घटनाओं और तथ्यों का प्रकटीकरण किया जाना चाहिए, जिसका अस्तित्व अग्रिम जमानत देने की शक्ति के प्रयोग में अनिवार्य है।
- ii. उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को अग्रिम जमानत के प्रश्न पर गंभीरता से विचार करना चाहिए तथा इसे दं.प्र.सं. की धारा 437 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट के विवेक पर नहीं छोड़ना चाहिए।

- iii. प्राथमिकी दर्ज करना कोई पूर्व शर्त नहीं है। हालांकि, उचित विश्वास के आधार पर संभावित गिरफ्तारी की संभावना को दर्शाया जाना चाहिए।
 - iv. अग्रिम जमानत तब तक दी जा सकती है जब तक आवेदक को उस मामले/अपराध के संबंध में गिरफ्तार नहीं किया जाता है।
 - v. अभियुक्त द्वारा उस अपराध(ओं)/मामले के संबंध में दं.प्र.सं. की धारा 438 का प्रयोग नहीं किया जा सकता है जिसके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है। जिस अपराध के लिए उसे गिरफ्तार किया गया है, उसके लिए दं.प्र.सं. की धारा 437 या 439 के तहत उपाय उपलब्ध है।
 - vi. सामान्य नियम यह है कि आदेश के संचालन को किसी समयावधि तक सीमित नहीं किया जाए।
33. गुरबखश सिंह सिब्बिया (पूर्वोक्त) की तुलना में कम संख्या वाली न्यायपीठों द्वारा उक्त मामले में निष्कर्षों के दायरे को सीमित करने के दृष्टिकोण से लिए गए विभिन्न निर्णयों के कारण, सिद्धराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे (पूर्वोक्त) में दं.प्र.सं. की धारा 438 के दायरे पर पुनः विचार किया गया। सिद्धराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे (पूर्वोक्त) में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित कि गुरबखश सिंह सिब्बिया (पूर्वोक्त) के दायरे को सीमित करने वाले वर्ष 1980 एवं वर्ष 2011 के बीच के निर्णय अनुचित थे।
34. हालाँकि, चूंकि सिद्धराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे (पूर्वोक्त) मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा निर्णय सुनाया गया था, इसलिए मामला पुनः संविधान न्यायपीठ के पास पहुंचा, जिसने सुशीला अग्रवाल

(पूर्वोक्त) मामले में निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित करते हुए निर्णय दिया:

- i. अग्रिम जमानत के लिए आवेदन ठोस तथ्यों (न कि अस्पष्ट या सामान्य आरोपों) पर आधारित होना चाहिए। यह जरूरी नहीं है कि आवेदन प्राथमिकी दर्ज होने के बाद ही किया जाए।
- ii. लोक अभियोजक को अग्रिम जमानत आवेदन पर नोटिस जारी करने की सलाह दी जाती है।
- iii. दं.प्र.सं. की धारा 438 में ऐसा कुछ भी नहीं है जो न्यायालयों को समय के संदर्भ में राहत को सीमित करने वाली शर्तें लगाने के लिए बाध्य करता हो। न्यायालयों को उचित ठहराया जाएगा - एवं उन्हें दं.प्र.सं. की धारा 437(3) [धारा 438(2) के आधार पर] में बताई गई शर्तें लगानी चाहिए। अन्य प्रतिबंधात्मक शर्तें लगाने की आवश्यकता को मामले-दर-मामला आधार पर आंका जाना चाहिए।
- iv. अग्रिम जमानत देने या न देने पर विचार करते समय न्यायालयों को सामान्यतः अपराध की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक को सौंपी गई भूमिका तथा मामले के तथ्यों जैसे पहलुओं को ध्यान में रखकर ही निर्णय लेना चाहिए।
- v. एक बार अग्रिम जमानत मंजूर हो जाने के बाद, अभियुक्त के आचरण और व्यवहार के आधार पर, आरोपपत्र दाखिल होने के बाद मुकदमे के अंत तक जारी रह सकती है।
- vi. अग्रिम जमानत का आदेश एक "व्यापक" आदेश नहीं होना चाहिए और एक विशिष्ट घटना तक ही सीमित होना चाहिए।

- vii. अग्रिम जमानत का आदेश पुलिस के जांच करने के अधिकारों को सीमित नहीं करता है।
 - viii. गुरबखश सिंह सिब्बिया (पूर्वोक्त) में “सीमित अभिरक्षा” या “समझी गई अभिरक्षा” के संबंध में की गई टिप्पणियां भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के प्रावधानों को पूर्ण करने के उद्देश्य के लिए पर्याप्त होंगी।
 - ix. पुलिस दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439(2) के तहत अग्रिम जमानत रद्द करने की मांग कर सकती है।
 - X. जमानत देने के आदेश की सत्यता पर अपीलीय या उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है।
35. सुशीला अग्रवाल (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय से अग्रिम जमानत प्रदान करने के संबंध में उपरोक्त सिद्धांत सामान्य हैं और हो सकता है कि उनका उस प्रश्न पर सीधा प्रभाव न पड़े जिस पर हमें विचार करने और उत्तर देने के लिए कहा गया है। सुशीला अग्रवाल (पूर्वोक्त) में दिए गए निर्णय में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है:

“62. ... इस पृष्ठभूमि में, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि संसद द्वारा शक्ति (अग्रिम जमानत देने हेतु) के प्रयोग पर लगाया गया एकमात्र प्रतिबंध सकारात्मक प्रतिबंध के माध्यम से है, अर्थात् ऐसे मामले में जहां अभियुक्तों पर दंड संहिता की धारा 376(3) या धारा 376-कख या धारा 376-घक या धारा 376-घख के तहत दंडनीय अपराध करने का आरोप है। दूसरे शब्दों में, संसद ने अब न्यायालयों (अर्थात् सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय) को ऐसे अपराधों के

*अभियुक्तों को अग्रिम जमानत देने से वंचित कर दिया है।।
...]*

63. अतः, स्पष्ट रूप से, जहां संसद ने संहिता की धारा 438 के तहत न्यायालयों की शक्ति को बाहर करना या प्रतिबंधित करना चाहा, उसने ऐसा स्पष्ट शब्दों में किया। अन्य अपराधों के अभियुक्त नागरिकों के अग्रिम जमानत मांगने के अधिकार को प्रतिबंधित करने में संसद की चूक, अनिवार्य रूप से यह मानने के लिए प्रेरित करती है कि न तो इस न्यायालय द्वारा व्यापक प्रतिबंध लगाया जा सकता है, न ही विवेक के प्रयोग में कठोर दिशा-निर्देशों पर जोर दिया जा सकता है-यह न्यायिक कानून के बराबर होगा।

(जोर दिया गया)

36. उपरोक्त निर्णय में जो कहा गया है वह यह है कि न्यायालय को अग्रिम जमानत देने की याचिका पर विचार करने के लिए अपनी शक्ति के प्रयोग के संबंध में किसी अन्य प्रतिबंध के पठन की कोशिश नहीं करनी चाहिए। जहाँ भी संसद न्यायालयों की शक्ति को बाहर करने या प्रतिबंधित करने का उद्देश्य रखती है या चाहती है, वह ऐसा स्पष्ट शब्दों में करती है। यह दं.प्र.सं. की धारा 438 की उप-धारा (4) के स्पष्ट पठन से बहुत स्पष्ट है। जैसा कि कहा गया है कि न्यायालय को कोई व्यापक प्रतिबंध का पाठ नहीं करना चाहिए और न ही उसे कुछ कठोर दिशा-निर्देशों पर जोर देना चाहिए क्योंकि ऐसा करना न्यायिक विधान के समान होगा।

ii. क्या किसी व्यक्ति को, किसी विशेष अपराध हेतु अभिरक्षा में रहते हुए, यह “विश्वास करने का कारण” हो सकता है कि उसे किसी

अन्य गैर-जमानती अपराध के संबंध में गिरफ्तार किया जा सकता है?

37. **सुनील कल्लानी** (पूर्वोक्त) में राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई तर्क-पद्धति यह थी कि एक बार किसी व्यक्ति को किसी अपराध के संबंध में अभिरक्षा में ले लिया जाता है, तो उसके बाद उसे किसी अन्य अपराध के संबंध में गिरफ्तार करना संभव नहीं है, क्योंकि गिरफ्तारी के लिए आवश्यक शर्तों में से एक है अभियुक्त के शरीर को वास्तविक स्पर्श या कारावास के माध्यम से पुलिस अधिकारियों की अभिरक्षा में रखना है। चूंकि अभिरक्षा में रहने के दौरान किसी व्यक्ति को वास्तविक स्पर्श या कारावास नहीं दिया जा सकता है, अतः उसके पास यह "विश्वास करने का कोई कारण" नहीं हो सकता है कि उसे किसी अन्य अपराध के संबंध में गिरफ्तार किया जा सकता है।
38. हालांकि, राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए तर्क में दो बुनियादी भ्रान्तियां हैं। सबसे पहले, उच्च न्यायालय ने पहले अपराध में अभिरक्षा से रिहा होने के तुरंत बाद किसी अन्य अपराध के संबंध में अभिरक्षा में लिए गए व्यक्ति की गिरफ्तारी की संभावना पर विचार नहीं किया। ऐसे परिदृश्य में, यदि यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि किसी अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत की मांग करने वाला आवेदन, उस अवधि के दौरान दायर किया जाता है जब आवेदक किसी अन्य अपराध के संबंध में अभिरक्षा में है, तो वह पोषणीय नहीं होगा, तो यह आवेदक को वैधानिक उपाय का लाभ उठाने से रोकने के बराबर होगा, जिसका वह अन्यथा हकदार है और जिसका वह पहले अपराध में अभिरक्षा से रिहा होते ही लाभ उठा सकता है। इस प्रकार, ऐसे मामलों में जहां अभियुक्त के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे उस अपराध से भिन्न किसी अपराध के संबंध में गिरफ्तार किया जा सकता

है, जिसमें वह रिहाई के तुरंत बाद अभिरक्षा में है, राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को, यदि कायम रहने दिया जाए, तो उसे अग्रिम जमानत मांगने के उसके वैधानिक अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा क्योंकि यह पूरी तरह संभव है कि ऐसे व्यक्ति द्वारा उपरोक्त अधिकार का प्रयोग करने से पहले ही उसे गिरफ्तार कर लिया जाए।

39. हमारी राय में, अभियुक्त को पहले अपराध में अभिरक्षा से रिहा होने तक अग्रिम जमानत लेने के अपने वैधानिक अधिकार का प्रयोग करने से वंचित करने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। हम प्रत्यर्थी के निवेदन में बल पाते हैं कि यदि अभियुक्त को एक अपराध में अभिरक्षा में रहते हुए किसी अन्य अपराध के संबंध में पूर्व-गिरफ्तारी जमानत प्राप्त करने की अनुमति नहीं दी जाती है, तो वह पहले मामले में रिहा होने के तुरंत बाद पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया जा सकता है, इससे पहले कि उसे सक्षम न्यायालय से संपर्क करने और उक्त विशेष अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन दायर करने का अवसर मिले। राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में यह व्यावहारिक कमी अभियुक्त की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को खतरे में डालने के उद्देश्य से जांच एजेंसियों द्वारा शोषण के लिए प्रवण है।

40. उच्च न्यायालय के तर्क में दूसरी भांति यह है कि किसी अन्य अपराध के संबंध में अभियुक्त की गिरफ्तारी नहीं हो सकती, जबकि वह पहले से ही किसी अपराध के संबंध में अभिरक्षा में है। हालांकि दं.प्र.सं. में ऐसा कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है जो किसी अपराध के संबंध में अभियुक्त की गिरफ्तारी के लिए प्रावधान करता हो, जबकि वह पहले से ही किसी अन्य अपराध में न्यायिक अभिरक्षा में हो, फिर भी इस न्यायालय ने केंद्रीय जांच ब्यूरो, विशेष जांच प्रकोष्ठ-1, नई दिल्ली

बनाम अनुपम जे. कुलकर्णी रिपोर्ट (1992) 3 एससीसी 141 में समझाया कि भले ही कोई अभियुक्त पहले के किसी मामले की जांच के सिलसिले में न्यायिक अभिरक्षा में हो, जांच एजेंसी उसे किसी अन्य मामले में शामिल होने के संबंध में औपचारिक रूप से गिरफ्तार कर सकती है और उसे उस अन्य मामले की जांच से जोड़ सकती है। दूसरे शब्दों में, इस न्यायालय ने स्पष्ट किया कि जब कोई व्यक्ति न्यायिक अभिरक्षा में होता है, तब भी उसे देश में कहीं और दर्ज किसी भी अन्य अपराध के संबंध में गिरफ्तार दिखाया जा सकता है। इस न्यायालय ने पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के **एस. हरसिमरन सिंह बनाम पंजाब राज्य** के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया, जिसकी रिपोर्ट **आप. एलजे 253/1984** में दी गई थी, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि किसी ऐसे व्यक्ति की पुनः गिरफ्तारी के विरुद्ध कानून के तहत कोई कठोर प्रतिबंध नहीं है जो किसी अन्य अपराध के संबंध में पहले से ही न्यायिक अभिरक्षा में है। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अन्य अपराध की जांच के उद्देश्य से दं.प्र.सं. की धारा 167(2) के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश द्वारा न्यायिक अभिरक्षा को पुलिस अभिरक्षा में बदला जा सकता है। अनुपम जे. कुलकर्णी (पूर्वोक्त) के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं:

“11. फिर यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या किसी घटना के दौरान उसके द्वारा कथित तौर पर किए गए अपराध के संबंध में गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उसी मामले में उसके द्वारा किए गए दूसरे अपराध के संबंध में फिर से पुलिस अभिरक्षा में रखा जा सकता है और यह तथ्य उसकी गिरफ्तारी के पहले पंद्रह दिनों की अवधि समाप्त होने के बाद अवलोकन में आती है। विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर-

जनरल ने प्रस्तुत किया कि की गई जांच और पुलिस द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्य के परिणामस्वरूप गिरफ्तार अभियुक्त को उस अपराध से अधिक गंभीर अपराधों में शामिल पाया जा सकता है जिसके लिए उसे मूल रूप से गिरफ्तार किया गया था और ऐसे मामले में कोई कारण नहीं है कि मजिस्ट्रेट की अभिरक्षा में मौजूद अभियुक्त को जांच के बाद के चरण में पुलिस अभिरक्षा में क्यों नहीं सौंप दिया जाना चाहिए, जब सूचना अधिक गंभीर अपराधों में उसकी मिलीभगत का प्रकटीकरण करती है। हम सहमत नहीं हो पा रहे हैं। एक घटना में ऐसा हो सकता है कि अभियुक्त ने कई अपराध किए हों और पुलिस उसे उपलब्ध जानकारी के आधार पर एक या दो अपराधों के संबंध में गिरफ्तार कर सकती है और पुलिस अभिरक्षा प्राप्त कर सकती है। अगर जांच के दौरान उसी घटना के दौरान अधिक गंभीर अपराधों में उसकी मिलीभगत को प्रकट करता है तो पुलिस को पहले पंद्रह दिनों की समाप्ति के बाद आगे की अवधि के लिए पुलिस अभिरक्षा मांगने का अधिकार नहीं है। अगर इसकी अनुमति है तो पुलिस विभिन्न चरणों में गंभीर प्रकृति के किसी न किसी अपराध को जोड़ सकती है और बार-बार पुलिस अभिरक्षा में आगे की अभिरक्षा की मांग कर सकती है, इससे धारा 167 के मूल उद्देश्य को ही नुकसान पहुंचेगा। हालांकि, हमें यह स्पष्ट करना चाहिए कि यह सीमा किसी अन्य घटना पर लागू नहीं होगी जिसमें गिरफ्तार अभियुक्त की मिलीभगत का प्रकटीकरण हुआ हो। यह एक अलग संव्यवहार होगा और यदि कोई अभियुक्त

किसी मामले के संबंध में न्यायिक अभिरक्षा में है और पुलिस को दूसरे मामले की जांच पूरी करने में सक्षम बनाने के लिए वे उसे दूसरे मामले की जांच से जोड़ने के उद्देश्य से पुलिस अभिरक्षा में रखने की मांग कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में उसे दूसरे मामले के संबंध में औपचारिक रूप से गिरफ्तार किया जाना चाहिए और फिर पुलिस अभिरक्षा में रखने के लिए मजिस्ट्रेट का आदेश प्राप्त करना चाहिए।

हालांकि विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर-जनरल ने मेहर चंद मामले [(1969) 5 डीएलटी 179] में हार्डी, जे. द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों पर दृढ़ता से भरोसा किया, जो उनके तर्क के समर्थन में ऊपर उद्धृत हैं अर्थात् एक गिरफ्तार अभियुक्त जो न्यायिक अभिरक्षा में है, उसे उसी मामले में जांच के बाद के चरण में पहले पंद्रह दिनों की समाप्ति के बाद भी पुलिस अभिरक्षा में सौंपा जा सकता है यदि सूचना अधिक गंभीर अपराधों में उसकी मिलीभगत का प्रकटीकरण करती है। हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि केवल यह तथ्य कि उसी मामले में गिरफ्तार अभियुक्त द्वारा कथित रूप से किए गए कुछ और अपराध उसी मामले में पाए जाते हैं, अपने आप में इसे एक अलग मामला बना देगा। ये सभी अपराध जिनमें बाद में पता चले तथाकथित गंभीर अपराध भी शामिल हैं, उसी संव्यवहार से जुड़े हैं जिसके सिलसिले में अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया था। अतः दोनों स्थितियों में काफी अंतर है। दो अलग-अलग संव्यवहार वाली घटनाएं दो अलग-अलग मामलों को जन्म देती हैं और धारा 167(1) और (2) के तहत शक्ति का प्रयोग उन

घटनाओं में से प्रत्येक के संबंध में उक्त प्रावधान के अंतर्निहित उद्देश्य के अनुरूप होना चाहिए जो दो अलग-अलग मामलों का गठन करती हैं। एक विशिष्ट मामले में जांच दूसरे मामले के समान नहीं हो सकती है। संहिता की धारा 167(1) और (2) के संदर्भ में गिरफ्तारी और अभिरक्षा में रखने को वास्तव में उस विशिष्ट मामले की जांच के संबंध में देखा जाना चाहिए जिसमें अभियुक्त व्यक्ति को अभिरक्षा में लिया गया है। एस. हरसिमरन सिंह बनाम पंजाब राज्य [1984 आप. एलजे 253 : आईएलआर (1984) 2 पी एंड एच 139] में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या धारा 167(2) द्वारा निर्धारित पंद्रह दिनों से अधिक की पुलिस अभिरक्षा की सीमा केवल एक ही मामले पर लागू होती है या एक ही अभियुक्त के खिलाफ जांच की आवश्यकता वाले विभिन्न मामलों की श्रृंखला पर लागू होती है और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया: (पृष्ठ 257, पैरा 10-क)

"हमें किसी विशेष अपराध की जांच के संबंध में अभिरक्षा में लिए गए व्यक्ति के खिलाफ कोई कठोर प्रतिबंध नहीं दिखता है. न ही उसे किसी अन्य अपराध की जांच के उद्देश्य से फिर से गिरफ्तार किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो, किसी अन्य अपराध की जांच के लिए संहिता की धारा 167(2) के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश द्वारा न्यायिक अभिरक्षा को पुलिस अभिरक्षा में

बदलने में कोई बड़ी बाधा नहीं है। इसलिए, किसी
अलग मामले में दोबारा गिरफ्तारी या दूसरी
गिरफ्तारी जरूरी नहीं कि कानून की पहुंच से
बाहर हो।"

पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ का यह दृष्टिकोण व्यावहारिक प्रतीत होता है और धारा 167 के अनुरूप भी है। हालाँकि, हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि पहले पंद्रह दिनों की अवधि समाप्त होने के बाद ऐसी पुनः गिरफ्तारी या दूसरी गिरफ्तारी और पुलिस अभिरक्षा की मांग करना उस विशिष्ट मामले के अलावा किसी अन्य मामले की जाँच के संबंध में होना चाहिए जिसके संबंध में अभियुक्त पहले से ही अभिरक्षा में है। धारा 167(2) का शाब्दिक अर्थ यह है कि किसी विशिष्ट मामले की जाँच के दौरान पहले से ही न्यायिक अभिरक्षा में मौजूद व्यक्ति की पुलिस अभिरक्षा के लिए नई रिमांड किसी भी परिस्थिति में जारी नहीं की जा सकती है, इससे दूसरे मामले की जाँच में गंभीर बाधा उत्पन्न होगी जिसके महत्व पर विशेष जोर देने की आवश्यकता नहीं है। प्रक्रियात्मक कानून न्याय के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए है न कि उसे विफल करने के लिए है। यह एक स्वीकृत नियम है कि ऐसी व्याख्या को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो न्याय के उद्देश्यों को आगे बढ़ाए। यह सच है कि पुलिस अभिरक्षा पूरी जांच का अंतिम लक्ष्य नहीं है, लेकिन फिर भी यह गंभीर और जघन्य अपराधों की जांच में इसकी प्राथमिक आवश्यकताओं में से एक है। विधानमंडल ने भी इस पर ध्यान दिया और सीमित

पुलिस अभिरक्षा की अनुमति दी। पहले पंद्रह दिनों की अवधि स्वाभाविक रूप से उस विशिष्ट मामले की जांच के संबंध में लागू होनी चाहिए जिसके लिए अभियुक्त को अभिरक्षा में रखा गया है। लेकिन ऐसी अभिरक्षा को उसी अभियुक्त से जुड़े एक बिल्कुल अलग मामले के संबंध में पुलिस अभिरक्षा की तरह ऐसी अभिरक्षा में नए रिमांड को लागू करने के लिए बाधा नहीं माना जा सकता है।

XXX XXX XXX

13. ... पहले पंद्रह दिनों की समाप्ति के बाद पुलिस अभिरक्षा में कोई अभिरक्षा नहीं हो सकती, यहां तक कि ऐसे मामले में भी जहां बाद में उसी संव्यवहार में उसके द्वारा किए गए कुछ और गंभीर या अन्य अपराध प्रकाश में आते हैं। लेकिन यह प्रतिबंध तब लागू नहीं होता जब एक ही गिरफ्तार अभियुक्त किसी दूसरे संव्यवहार से उत्पन्न किसी दूसरे मामले में शामिल हो। यहां तक कि अगर वह पहले के मामले की जांच के सिलसिले में न्यायिक अभिरक्षा में है, तो उसे अलग मामले में उसकी संलिप्तता के संबंध में औपचारिक रूप से गिरफ्तार किया जा सकता है और उसे उस दूसरे मामले की जांच से जोड़ा जा सकता है और मजिस्ट्रेट धारा 167(2) और प्रावधान के तहत कार्रवाई कर सकता है तथा परन्तुक को निरस्त कर सकता है और उसे पहले पंद्रह दिन की अवधि के दौरान उसमें उल्लिखित अभिरक्षा में भेज सकता है और उसके बाद ऊपर चर्चित परन्तुक के अनुसार उसे वापस भेज सकता है। ..."

(जोर दिया गया)

41. अपीलार्थी की ओर से यह प्रस्तुत किया गया कि किसी अपराध के संबंध में पहले से ही न्यायिक अभिरक्षा में मौजूद व्यक्ति के पास यह मानने का कोई कारण नहीं हो सकता कि उसे किसी दूसरे अपराध के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है। हालाँकि, हमें उपरोक्त प्रस्तुतियों में कोई गुणागुण नहीं दिखता है। ऐसे दो तरीके हैं जिनसे किसी व्यक्ति को, जो पहले से ही अभिरक्षा में है, गिरफ्तार किया जा सकता है -

क. पहला, जैसे ही वह पहले मामले के संबंध में अभिरक्षा से रिहा होता है, पुलिस अधिकारी उसे किसी अन्य मामले के संबंध में गिरफ्तार कर सकता है और अभिरक्षा में ले सकता है; तथा

ख. दूसरा, पहले मामले में अभिरक्षा से रिहा होने से पहले ही, दूसरे अपराध की जांच कर रहा पुलिस अधिकारी उसे औपचारिक रूप से गिरफ्तार कर सकता है और उसके बाद दूसरे अपराध के लिए अधिकारिता वाले मजिस्ट्रेट से दं.प्र.सं. की धारा 267 के तहत बंदी ट्रांजिट वारंट ("पी.टी. वारंट") प्राप्त कर सकता है और उसके बाद मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने पर (प्रतिपेक्षण) रिमांड के लिए अनुरोध कर सकता है;

या

औपचारिक गिरफ्तारी करने के बजाय, जांच अधिकारी अधिकारिता वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन कर सकता है कि वह अभियुक्त को जेल से पेश करने के लिए पी.टी. वारंट प्राप्त करे। यदि दं.प्र.सं. की धारा 267 के तहत आवश्यक शर्तें पूरी होती हैं, तो अधिकारिता वाले मजिस्ट्रेट अभियुक्त को न्यायालय में पेश करने के लिए पी.टी. वारंट जारी करेंगे। जब अभियुक्त को पी.टी. वारंट के अनुसरण में न्यायालय के समक्ष पेश

किया जाता है, तो जांच अधिकारी को दं.प्र.सं. की धारा 167(1) के अनुसार अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा या न्यायिक अभिरक्षा में भेजने का अनुरोध करने की स्वतंत्रता होगी। उस समय, अधिकारिता वाले मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी के अनुरोध पर विचार करेंगे, केस डायरी और अभियुक्त के प्रतिनिधित्व का अध्ययन करेंगे और पुनः, अभियुक्त को रिमांड पर लेने से इनकार करने के लिए उचित आदेश पारित करेंगे।
[देखें: *राज्य बनाम के.एन. नेहरू, 2011 एससीसी ऑनलाइन मद 1984* में रिपोर्ट किया गया]

42. चूंकि उपरोक्त दोनों परिस्थितियों में गिरफ्तारी विधि में स्वीकार्य है, अतः यह मानना त्रुटिपूर्ण होगा कि अभिरक्षा में रहने वाले व्यक्ति के पास यह “विश्वास करने का कारण” नहीं हो सकता कि उसे किसी दूसरे अपराध के संबंध में गिरफ्तार किया जा सकता है। इसके तार्किक विस्तार के रूप में, यह भी कहा जा सकता है कि जब प्रक्रियात्मक कानून जांच एजेंसी को किसी व्यक्ति को किसी दूसरे अपराध के संबंध में गिरफ्तार करने से नहीं रोकता है, जबकि वह पहले से ही किसी पिछले अपराध में अभिरक्षा में है, तो अभियुक्त को भी सिर्फ इस आधार पर अग्रिम जमानत हेतु आवेदन करने के उसके वैधानिक अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है कि वह किसी दूसरे अपराध के संबंध में अभिरक्षा में है।
43. किसी अपराध के संबंध में अभियुक्त की गिरफ्तारी की प्रक्रिया, पहले अपराध में अभिरक्षा से रिहा होने के बाद, गिरफ्तारी की प्रक्रिया के समान होगी, जिसका पालन किसी अन्य संज्ञेय अपराध में किया जाना आवश्यक है। हालांकि, हमें लगता है कि दूसरे श्रेणी के मामलों में गिरफ्तारी को प्रभावी बनाने की प्रक्रिया पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है, अर्थात्, जहां जांच एजेंसी किसी अपराध के संबंध में

अभियुक्त को गिरफ्तार करती है, जबकि वह किसी अन्य अपराध के संबंध में अभिरक्षा में है।

44. जैसा कि पिछले पैराग्राफ में चर्चा की गई है, किसी अभियुक्त को या तो तब गिरफ्तार किया जा सकता है जब वह स्वतंत्र हो या जब वह किसी अपराध में अभिरक्षा में हो। इसी तरह, पुलिस अधिकारी द्वारा बिना वारंट के या न्यायालय द्वारा जारी वारंट के साथ गिरफ्तारी की जा सकती है। इस प्रकार, निम्नलिखित संभावनाएँ उभरती हैं:

क. यदि किसी अभियुक्त को बिना वारंट के गिरफ्तार किया जाता है, जबकि वह स्वतंत्र है और अभिरक्षा में नहीं है, तो उसे निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना चाहिए, जो उसे पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा में भेज सकता है या अभियुक्त द्वारा आवेदन किए जाने पर जमानत दे सकता है।

ख. यदि किसी अभियुक्त को वारंट के साथ गिरफ्तार किया जाता है, जबकि वह स्वतंत्र है और अभिरक्षा में नहीं है, तो दं.प्र.सं. की धारा 81 ऐसे व्यक्ति को वारंट जारी करने वाली न्यायालय के समक्ष पेश करने की अनुमति देता है।

ग. यदि किसी अभियुक्त को किसी अपराध के लिए पहले से ही अभिरक्षा में रहते हुए वारंट के साथ या उसके बिना गिरफ्तार किया जाता है, तो केवल दं.प्र.सं. की धारा 267 के तहत ही उसे ऐसी अभिरक्षा से हटाया जा सकता है एवं उस मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जा सकता है, जिसके क्षेत्रीय अधिकारिता में दूसरा अपराध पंजीकृत है।

45. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 46(1) इस प्रकार है:

“46. गिरफ्तारी कैसे की जाएगी (1) गिरफ्तारी करने में पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति, जो गिरफ्तारी कर रहा है, गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के शरीर को वस्तुतः छुएगा या परिरुद्ध करेगा, जब तक उसने वचन या कर्म द्वारा अपने को अभिरक्षा में समर्पित न कर दिया हो।

परंतु जहां किसी स्त्री को गिरफ्तार किया जाना है वहां जब तक कि परिस्थितियों से इसके विपरीत उपदर्शित न हो, गिरफ्तारी की मौखिक इत्तिला पर अभिरक्षा में उसके समर्पण कर देने की उपधारणा की जाएगी और जब तक कि परिस्थितियों में अन्यथा अपेक्षित न हो या जब तक पुलिस अधिकारी महिला न हो, तब तक पुलिस अधिकारी महिला को गिरफ्तार करने के लिए उसके शरीर को नहीं छुएगा।”

46. इस प्रकार, उपरोक्त को स्पष्ट रूप से पठन पर यह स्पष्ट होता है कि गिरफ्तारी में गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के शरीर को वास्तविक रूप से छूना या उसे बंधक बनाना शामिल है। हालाँकि, वास्तविक स्पर्श के बिना भी गिरफ्तारी की जा सकती है, यदि गिरफ्तार किया जाने वाला व्यक्ति शब्दों या कार्यों द्वारा अभिरक्षा में आ जाता है।
47. प्रक्रियात्मक अधिनियमों या विभिन्न मूल अधिनियमों में ‘गिरफ्तारी’ शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है, हालाँकि दं.प्र.सं. की धारा 46 गिरफ्तारी के तरीके को निर्धारित करती है। ब्लैक लॉ डिक्शनरी (5वां संस्करण, 1979) में गिरफ्तारी को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

“कानूनी अधिकार द्वारा किसी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता से वंचित करना। किसी आपराधिक आरोप या नागरिक मांग

का जवाब देने के लिए उसे पकड़ने या अभिरक्षा में रखने के उद्देश्य से, वास्तविक या काल्पनिक अधिकार के तहत किसी अन्य व्यक्ति को अभिरक्षा में लेना। गिरफ्तारी में गिरफ्तारी का अधिकार, गिरफ्तारी को प्रभावित करने के उद्देश्य से उस अधिकार का दावा और गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति को रोकना शामिल है। 'गिरफ्तारी' के लिए मात्र इतना ज़रूरी है कि अधिकारी द्वारा कोई ऐसा कार्य किया जाए जिसमें व्यक्ति को अभिरक्षा में लेने या अभिरक्षा में लेने का उसका उद्देश्य दर्शाया गया हो और इस तरह उस व्यक्ति को अधिकारी के वास्तविक नियंत्रण और इच्छा के अधीन किया गया हो, क्योंकि गिरफ्तारी की औपचारिक घोषणा की आवश्यकता होती है।"

48. इसी तरह, 'अभिरक्षा' शब्द को भी दं.प्र.सं. या भा.दं.सं. में परिभाषित नहीं किया गया है। कॉर्पस ज्यूरिस सेकंडम (वॉल्यूम 25, पृष्ठ 69) में 'अभिरक्षा' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

"जब इसे व्यक्तियों पर लागू किया जाता है, तो इसका तात्पर्य संयम से है और परिस्थितियों के आधार पर संयम के लिए पर्याप्त शारीरिक बल का अर्थ हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है और अपराध के आरोप में व्यक्तियों के संदर्भ में, इसे वास्तविक कारावास या इसे लागू करने के वर्तमान साधनों के अर्थ के रूप में परिभाषित किया गया है, व्यक्ति की उसकी इच्छा के विरुद्ध अभिरक्षा में लेना है। वस्तुओं पर लागू होने पर, इसका अर्थ है प्रभार या सुरक्षित रखना, और नियंत्रण को दर्शाता है और इसमें भौतिक या मैनुअल कब्जे का तत्व भी शामिल है, हालांकि इसके लिए

इसकी आवश्यकता नहीं है, केवल एक अस्थायी भौतिक नियंत्रण और अभिरक्षा में वस्तु की सुरक्षा और संरक्षण की जिम्मेदारी है। इस तरह से प्रयोग किए जाने पर, शब्द अधिकार के प्रभुत्व या सर्वोच्चता को नहीं दर्शाता है। उक्त शब्द को किसी वस्तु की रखवाली, देखभाल, निगरानी, निरीक्षण, संरक्षण या सुरक्षा के अर्थ के रूप में परिभाषित किया गया है, और इसके साथ यह विचार जुड़ा हुआ है कि वस्तु उस बंदी की तत्काल व्यक्तिगत देखभाल और नियंत्रण में है जिसकी अभिरक्षा में वह वस्तु है; प्रभार; आदेश या निर्देश के अधीन रखने का प्रभार; तत्काल प्रभार और नियंत्रण और स्वामित्व का अंतिम पूर्ण नियंत्रण नहीं है।"

[देखें: *रोशन बीवी व अन्य बनाम तमिलनाडु सरकार के संयुक्त सचिव व अन्य*, 1983 एससीसी ऑनलाइन मद 163]

49. राजस्थान उच्च न्यायालय यह मानकर आगे बढ़ा कि जब कोई व्यक्ति न्यायिक अभिरक्षा में हो तो उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सकता क्योंकि पुलिस अधिकारी के लिए उसे बिना वास्तविक स्पर्श या कारावास के गिरफ्तार करना संभव नहीं है जबकि ऐसा व्यक्ति अभिरक्षा में है। हालाँकि, हम उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं क्योंकि वास्तव में शरीर को पकड़े या स्पर्श किए बिना भी वैध गिरफ्तारी की जा सकती है। ऐसी हरकतें या शब्द जो सफलतापूर्वक अभियुक्त को यह एहसास दिलाते हैं कि वह किसी मजबूरी में है और उसके बाद उसे ऐसी मजबूरी के आगे झुकने के लिए मजबूर करते हैं, गिरफ्तारी के लिए पर्याप्त होंगे। इस न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमन उपाध्याय में एआईआर 1960 एससी 1125 में रिपोर्ट

किया कि किसी व्यक्ति द्वारा शब्द या क्रिया द्वारा अभिरक्षा में समर्पण करना दं.प्र.सं. की धारा 46 के तहत गिरफ्तारी हेतु पर्याप्त है।

50. उपर्युक्त संदर्भ में, हम *एल्डरसन बनाम ब्रूथ* में क्वींस न्यायपीठ के निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं और उस पर भरोसा कर सकते हैं, जिसे [1969] 2 ऑल ईआर 271 में रिपोर्ट किया गया था। प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं:

“गिरफ्तारी की परिभाषा के बारे में प्राचीन और आधुनिक दोनों तरह के कई मामले हैं, और जबकि एक समय था जब यह अभिनिर्धारित किया जाता था कि जब तक वास्तव में पकड़ा जाना या स्पर्श न हो, तब तक कोई वैध गिरफ्तारी नहीं हो सकती, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अब यह कानून नहीं है। बिना किसी स्पर्श के केवल शब्दों से, “मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूँ” कहकर गिरफ्तारी हो सकती है, बशर्ते कि अभियुक्त पुलिस अधिकारी के सामने आत्मसमर्पण कर दे और उसके साथ चला जाए। समान रूप से यह स्पष्ट है, जैसा कि मुझे लगता है, कि गिरफ्तारी तब होती है जब किसी भी तरह के शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जो मामले की परिस्थितियों में अभियुक्त के ध्यान में लाने के लिए गणना की गई थी, और अभियुक्त के ध्यान में लाया गया था, कि वह मजबूर था और उसके बाद उसने उस मजबूरी के आगे समर्पण कर दिया।”

(जोर दिया गया)

51. उपर्युक्त निर्णय इस दृष्टिकोण को पुष्ट करता है कि गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के शरीर को वास्तव में पकड़ना या छूना उस मामले

में आवश्यक नहीं है, जहां गिरफ्तार करने वाला व्यक्ति शब्दों के माध्यम से अभियुक्त को यह बताता है कि वह मजबूर है और उसके बाद अभियुक्त उस मजबूरी के आगे झुक जाता है। यह दं.प्र.सं. की धारा 46 के तहत परिकल्पित गिरफ्तारी के तौर-तरीकों के अनुरूप है, जिसमें यह भी प्रावधान है कि गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति को शब्दों या कार्यों द्वारा गिरफ्तार करने वाले की अभिरक्षा में सौंपना गिरफ्तारी के बराबर हो सकता है। **एल्डरसन** (पूर्वोक्त) में निर्णय का सार यह है कि वास्तव में पकड़ना या छूना चाहिए, और ऐसा न होने पर, गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के ध्यान में यह लाया जाना चाहिए कि वह मजबूर है, और इस तरह के नोटिस के परिणामस्वरूप, उक्त व्यक्ति को उस मजबूरी के आगे झुकना चाहिए, और उसके बाद ही गिरफ्तारी पूरी होती है।

52. जैसा कि पिछले पैराग्राफ में बताया गया है, एक पुलिस अधिकारी किसी व्यक्ति को किसी अपराध के संबंध में औपचारिक रूप से गिरफ्तार कर सकता है, जबकि वह पहले से ही किसी अन्य अपराध में अभिरक्षा में है। हालाँकि, ऐसी औपचारिक गिरफ्तारी से अभियुक्त पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में नहीं आता है क्योंकि अभियुक्त उस मजिस्ट्रेट की अभिरक्षा में रहता है जिसने उसे पहले अपराध में न्यायिक अभिरक्षा में भेजा था। एक बार ऐसी औपचारिक गिरफ्तारी हो जाने के बाद, पुलिस अधिकारी को बिना किसी देरी के पीटी वारंट जारी करने के लिए अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट के समक्ष दं.प्र.सं. की धारा 267 के तहत आवेदन करना होगा। यदि, दं.प्र.सं. की धारा 267 के तहत निर्धारित आवश्यकताओं के आधार पर, अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट द्वारा पीटी वारंट जारी किया जाता है, तो अभियुक्त को दं.प्र.सं. की क्रमशः धारा 268 और 269 के अधीन, वारंट में उल्लिखित तिथि और समय पर ऐसे

मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना चाहिए। अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए जाने पर, अभियुक्त को पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा में भेजा जा सकता है या यदि आवेदन किया जाता है और अनुमति दी जाती है, तो उसे जमानत पर छोड़ा जा सकता है। हमने उन मामलों में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को रेखांकित किया है, जहां पहले से ही अभिरक्षा में लिए गए व्यक्ति को किसी अन्य अपराध के संबंध में गिरफ्तार किया जाना आवश्यक है, इसका एकमात्र कारण राजस्थान, दिल्ली और इलाहाबाद उच्च न्यायालयों के तर्क को नकारना है कि एक बार अभिरक्षा में लिए जाने के बाद, किसी अन्य अपराध के संबंध में किसी व्यक्ति को पुनः से गिरफ्तार करना संभव नहीं है। जब अभिरक्षा में लिए गए व्यक्ति का सामना किसी अन्य अपराध के संबंध में प्राप्त पी.टी. वारंट से होता है, तो ऐसे व्यक्ति के पास पी.टी. वारंट प्राप्त करने वाले पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में प्रस्तुत होने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता है। इस प्रकार, ऐसे परिदृश्य में, हालांकि स्पर्श द्वारा अभिरक्षा में रखने की कोई बाध्यता नहीं है, फिर भी पुलिस अधिकारी द्वारा अभियुक्त को पी.टी. वारंट दिखाने की कार्रवाई के आधार पर अभियुक्त द्वारा अभिरक्षा में प्रस्तुत होना होता है। इसके बाद, अभियुक्त को अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने पर, जैसे किसी स्वतंत्र व्यक्ति की गिरफ्तारी के मामले में, जो अभिरक्षा में नहीं है, अभियुक्त को या तो पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा में भेजा जा सकता है, या उसे जमानत पर बढ़ाया जा सकता है और पहले अपराध में अभिरक्षा में वापस भेजा जा सकता है। कई निर्णयों ने अभिनिर्धारित किया है कि हालांकि जांच एजेंसी के समक्ष अभियुक्त को पेश करने के लिए दं.प्र.सं. की धारा 267 को लागू नहीं किया जा सकता है, फिर भी इसे निस्संदेह अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट के समक्ष

अभियुक्त को पेश करने की आवश्यकता के लिए लागू किया जा सकता है, जो उसके बाद उसे जांच एजेंसी की अभिरक्षा में भेज सकता है। प्रावधान की ऐसी व्याख्या “अन्य कार्यवाही” शब्दों को सही प्रभाव देगी क्योंकि वे दं.प्र.सं. की धारा 267 के पाठ में दिखाई देते हैं, जिसे जांच के चरण में कार्यवाही को बाहर करने के लिए नहीं समझा जा सकता है। [[देखें: *सी. नटेसन बनाम तमिलनाडु राज्य व अन्य*, 1998 एससीसी ऑनलाइन मैड 931; *रणजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, 1995 सीआरआई एलजे 3505; *महाराष्ट्र राज्य बनाम यादव कोहाचाडे*, 2000 सीआरआई एलजे 959]]

53. इस प्रकार, राजस्थान, इलाहाबाद और दिल्ली उच्च न्यायालयों द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के विपरीत, एक व्यक्ति, जब किसी अपराध के संबंध में अभिरक्षा में होता है, तो उसे किसी अन्य अपराध के संबंध में गिरफ्तार किया जा सकता है, या तो पहले अपराध में अभिरक्षा से रिहा होने के बाद, या यहां तक कि पहले अपराध में अभिरक्षा में रहने के दौरान भी किया जा सकता है। ऐसी परिस्थितियों में, यह निष्कर्ष निकलता है कि एक व्यक्ति, जब किसी अपराध के संबंध में अभिरक्षा में होता है, तो उसके पास “मानने का कारण” हो सकता है कि उसे किसी अन्य संज्ञेय अपराध के संबंध में गिरफ्तार किया जा सकता है। हमें धारा 438 के पठन या दं.प्र.सं. की योजना में कोई प्रतिबंध नहीं मिलता है जो किसी व्यक्ति को किसी अन्य अपराध के संबंध में अभिरक्षा में रहने के दौरान किसी अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत मांगने से रोकता है। ऐसे किसी प्रतिबंध के अभाव में, हमें दं.प्र.सं. की धारा 438 के पठन में किसी व्यक्ति को विभिन्न अपराधों के संबंध में अग्रिम जमानत मांगने से रोकने के लिए कोई निषेध पढ़ने का कोई वैध कारण नहीं मिलता है।

54. किसी अन्य अपराध के संबंध में अभिरक्षा में रहते हुए, किसी अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने का विकल्प अभियुक्त को केवल तब तक उपलब्ध होगा जब तक कि उसे संबंधित न्यायालय से प्राप्त पी.टी. वारंट के आधार पर पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफ्तार नहीं किया जाता है। हमें यह स्पष्ट करना चाहिए कि केवल औपचारिक गिरफ्तारी (कागज़ी गिरफ्तारी) से अभियुक्त के अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने का अधिकार समाप्त नहीं होगा। हम ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि औपचारिक गिरफ्तारी के परिणामस्वरूप अभियुक्त, जो पहले से ही अभिरक्षा में है, को पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में प्रस्तुत नहीं किया जाएगा, जिससे बाद के मामले में औपचारिक गिरफ्तारी हो सके। हालांकि, अगर औपचारिक गिरफ्तारी करने के बाद, पुलिस अधिकारी उसी के आधार पर अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट से पी.टी. वारंट प्राप्त करता है, तो अभियुक्त के पास उस मजबूरी को मानने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा और उसके बाद अभियुक्त का अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने का अधिकार समाप्त हो जाएगा।
55. यदि किसी अभियुक्त को किसी अन्य अपराध में अभिरक्षा में रहते हुए किसी अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत दी जाती है, तो पहले मामले में पुलिस अधिकारी के लिए यह अब स्वतंत्र नहीं रहेगा कि वह दं.प्र.सं. की धारा 267 के तहत अभियुक्त को पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा में भेजने के उद्देश्य से अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने के लिए आवेदन करे। हालांकि, अधिकारिता प्राप्त मजिस्ट्रेट के लिए यह स्वतंत्र होगा कि वह अभियुक्त को पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा में भेजने के उद्देश्य को छोड़कर उक्त धारा के तहत उल्लिखित किसी अन्य उद्देश्य के लिए धारा 267(1) के तहत पेश करने की मांग करे।

[देखें: [तुषारभाई रजनीकांतभाई शाह बनाम गुजरात राज्य](#), 2024

एससीसी ऑनलाइन एससी 1897 में रिपोर्ट किया गया]

56. हम यह भी कहना चाहेंगे कि अपीलार्थी के इस तर्क के विपरीत कि अभियुक्त को अग्रिम जमानत दिए जाने से जांच अधिकारी जांच व खोज आदि करने से वंचित हो जाएंगे, संबंधित जांच अधिकारी के लिए यह हमेशा खुला विकल्प है कि वह उस मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन करे जिसकी अभिरक्षा में अभियुक्त किसी अन्य अपराध के संबंध में है, तथा उस मजिस्ट्रेट से उस विशेष अपराध के संबंध में अभियुक्त से पूछताछ करने की अनुमति मांगे जिसकी वह जांच कर रहा है।
57. अपीलार्थी ने यह भी कहा कि चूंकि दं.प्र.सं. की धारा 438 का उद्देश्य किसी अभियुक्त को गिरफ्तारी के अपमान से बचाना है, इसलिए प्रावधान के सुरक्षा कवर में वह व्यक्ति शामिल नहीं होगा जो पहले से ही अभिरक्षा में है। दूसरे शब्दों में, किसी व्यक्ति को किसी अपराध के संबंध में एक बार गिरफ्तार किए जाने के बाद, उसके बाद होने वाली किसी भी गिरफ्तारी के लिए उसे और अधिक अपमान सहना नहीं पड़ सकता है, और इस प्रकार, पहले से ही अभिरक्षा में लिए गए व्यक्ति को अग्रिम जमानत की राहत उपलब्ध नहीं कराई जानी चाहिए।
58. हम अपीलार्थी के उपरोक्त तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। प्रत्येक गिरफ्तारी के साथ व्यक्ति का अपमान और बदनामी बढ़ती है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि प्रत्येक बाद की गिरफ्तारी कानूनी परेशानियों में निरंतर या बढ़ती हुई भागीदारी को रेखांकित करती है जो व्यक्ति की गरिमा और उसकी सार्वजनिक प्रतिष्ठा को नष्ट कर सकती है। प्रारंभिक गिरफ्तारी ही अक्सर सामाजिक कलंक और व्यक्तिगत संकट की लहर लाती है, क्योंकि व्यक्ति अपनी कानूनी स्थिति के निहितार्थों से जूझता

है। जब बाद में गिरफ्तारी होती है, तो यह भावनात्मक और सामाजिक बोझ को और बढ़ा देती है, जिससे उसके अपराधी होने की धारणा बढ़ जाती है और समाज से नकारात्मक निर्णय मजबूत होते हैं। अलग-अलग अपराधों के संबंध में बाद की गिरफ्तारी, जबकि व्यक्ति किसी विशेष अपराध में अभिरक्षा में है, व्यक्ति को उसके समुदाय से और अलग कर देती है और उसकी व्यक्तिगत अखंडता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। इस कारण से, यह मान लेना त्रुटिपूर्ण है कि बाद की गिरफ्तारी अपमान के स्तर को कम करती है। इसके विपरीत, प्रत्येक अतिरिक्त गिरफ्तारी व्यक्ति की बेइज्जती को बढ़ाती है, जिससे ऐसे कानूनी उलझनों का संचयी प्रभाव और भी विनाशकारी हो जाता है।

iii. दृष्टांत उदाहरण

59. यदि अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत किए गए निवेदन स्वीकार कर लिए जाएं तो होने वाले भेदभाव को निम्नलिखित उदाहरणों की सहायता से समझा जा सकता है:

दृष्टांत क

(1) 'क' भा.दं.सं. की धारा 420 के तहत एक मामले में अभिरक्षा में है, और एक खास तिथि पर उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाता है। उसी दिन, 'क' की पत्नी उसके खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 498क के तहत मामला दर्ज कराती है। यहां, अगर अपीलार्थी की दलील स्वीकार कर ली जाती है, तो 'क' अग्रिम जमानत के लिए आवेदन कर सकेगा।

(2) 'ख' भा.दं.सं. की धारा 420 के तहत अभिरक्षा में है और उसने जमानत के लिए आवेदन किया है। हालांकि, उसे जमानत पर रिहा करने का आदेश अभी पारित होना बाकी है। इस दौरान, 'ख' की पत्नी उसके खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 498क के तहत मामला दर्ज करती है। यहां,

अगर अपीलार्थी की दलील स्वीकार कर ली जाती है। 'ख' धारा 420 के तहत एक मामले के लिए अभिरक्षा में रहते हुए अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने में सक्षम नहीं होगा। वह धारा 498क के तहत मामले के संबंध में अग्रिम जमानत के लिए तभी आवेदन कर सकता है, जब उसे धारा 420 के तहत मामले में रिहा होने के तुरंत बाद गिरफ्तार नहीं किया जाता है। अगर उसे धारा 420 के तहत मामले में रिहा होने के तुरंत बाद धारा 498क के तहत मामले में गिरफ्तार किया जाता है, तो उसके लिए एकमात्र उपाय नियमित जमानत लेना होगा।

यदि अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत की गई व्याख्या को स्वीकार कर लिया जाता है, तो समान अपराधों के अभियुक्त दो व्यक्तियों को अलग-अलग अधिकार प्राप्त होंगे। जहाँ एक व्यक्ति को दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत अधिकार प्राप्त करने की अनुमति है, वहीं दूसरे व्यक्ति को केवल उस समय के आधार पर इससे वंचित किया जाता है जब एफआईआर दर्ज की गई थी।

दृष्टांत ख

(1) 'भ' भा.दं.सं. की धारा 302 के तहत आजीवन कारावास या मौत की सजा के साथ अपराध के लिए अभिरक्षा में है, और बाद में उसके खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 376 के तहत अपराध के लिए एफआईआर दर्ज की जाती है, जो आजीवन कारावास के साथ दंडनीय है। यहां, अगर अपीलार्थी की दलील स्वीकार कर ली जाती है, तो 'भ' बाद के मामले में अग्रिम जमानत के लिए आवेदन नहीं कर पाएगा, क्योंकि वह भा.दं.सं. की धारा 302 के तहत पहले के मामले के लिए अभिरक्षा में है।

(2) 'म' भा.दं.सं. की धारा 384 [जबरन वसूली - 3 साल की कैद से दंडनीय] के तहत अपराध के लिए अभिरक्षा में है, और इस अपराध के

लिए अभिरक्षा में रहते हुए, उसके खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 406 [आपराधिक विश्वासघात - 3 साल की कैद से दंडनीय] के तहत अपराध के लिए प्राथमिकी दर्ज की जाती है। इस उदाहरण में भी, यदि अपीलार्थी की दलील स्वीकार कर ली जाती है, तो 'म' अग्रिम जमानत के लिए आवेदन नहीं कर पाएगा, भले ही अपराध 3 साल की कैद से दंडनीय हो।

अतः, 'म' को ऐसे व्यक्ति के बराबर रखा जाएगा जिसने गंभीर अपराध किया है और उसे आमतौर पर अग्रिम जमानत नहीं दी जाएगी। हालांकि, अधिकतम 3 साल की कैद [अर्थात् भा.दं.सं. की धारा 406] से दंडनीय अपराध के लिए अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने से 'म' को प्रतिबंधित करके, 'म' को 'भ' के समान श्रेणी में रखा गया है।

ड. निष्कर्ष

60. मामले की हमारी जांच से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचे हैं:

- i. किसी अपराध के संबंध में अभियुक्त को अग्रिम जमानत मांगने का अधिकार है, जब तक कि उसे उस अपराध के संबंध में गिरफ्तार नहीं किया जाता है। एक बार जब उसे गिरफ्तार कर लिया जाता है, तो उसके लिए उपलब्ध एकमात्र उपाय दं.प्र.सं. की धारा 437 या धारा 439 के तहत नियमित जमानत के लिए आवेदन करना है, जैसा भी मामला हो। यह गुरबख्श सिंह सिब्बिया (पूर्वोक्त) के पैरा 39 से स्पष्ट है।
- ii. दं.प्र.सं. या किसी अन्य क़ानून में ऐसा कोई स्पष्ट या निहित प्रतिबंध नहीं है जो सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय को किसी अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार करने और निर्णय लेने से रोकता है, जबकि आवेदक किसी अन्य अपराध के

संबंध में अभिरक्षा में है। दं.प्र.सं. की धारा 438 में किसी प्रतिबंध का पठन नहीं किया जा सकता है जो किसी अभियुक्त को किसी अन्य अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने से रोकता है, जबकि वह किसी अन्य अपराध में अभिरक्षा में है, क्योंकि यह प्रावधान के उद्देश्य और विधायिका के उद्देश्य के खिलाफ होगा। दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत देने की न्यायालय की शक्ति पर एकमात्र प्रतिबंध दं.प्र.सं. की धारा 438 की उप-धारा (4) के तहत निर्धारित है, और अधिनियम, 1989 आदि जैसे अन्य कानूनों में है।

- iii. जब किसी विशेष अपराध के सिलसिले में पहले से ही अभिरक्षा में लिए गए व्यक्ति को किसी अन्य अपराध में गिरफ्तारी की आशंका होती है, तो उसके बाद का अपराध सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए एक अलग अपराध होता है। इसका अनिवार्य रूप से यह अर्थ होगा कि बाद के अपराध के संबंध में अभियुक्त और जांच एजेंसी को कानून द्वारा दिए गए सभी अधिकार स्वतंत्र रूप से संरक्षित हैं।
- iv. जांच एजेंसी, अगर किसी अपराध में पूछताछ/जांच के उद्देश्य से आवश्यक समझती है, तो वह अभियुक्त की रिमांड मांग सकती है, जबकि वह पिछले अपराध के संबंध में अभिरक्षा में है, जब तक कि बाद के अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत देने का कोई आदेश पारित नहीं किया गया हो। हालांकि, अगर अभियुक्त द्वारा बाद के अपराध के संबंध में अग्रिम जमानत देने का आदेश प्राप्त कर लिया जाता है, तो जांच एजेंसी के लिए बाद के अपराध के संबंध में अभियुक्त की रिमांड मांगना अब स्वतंत्र नहीं रहेगा। इसी तरह, अगर अभियुक्त द्वारा अग्रिम जमानत प्राप्त करने में सक्षम

होने से पहले पुलिस रिमांड का आदेश पारित किया जाता है, तो उसके बाद अभियुक्त के लिए अग्रिम जमानत मांगना स्वतंत्र नहीं होगा और उसके लिए उपलब्ध एकमात्र विकल्प नियमित जमानत मांगना होगा।

- v. हम श्री दवे के साथ इस बात पर सहमत हैं कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के दायरे में दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत के प्रावधान की सहायता से अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करने के अभियुक्त के अधिकार को कानून द्वारा स्थापित वैध प्रक्रिया के बिना परास्त या विफल नहीं किया जा सकता है। उनका यह कहना सही है कि ऐसी प्रक्रिया को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत निष्पक्षता, तर्कसंगतता और स्पष्ट गैर-मनमानापन की कसौटी पर भी खरा उतरना चाहिए।
- vi. दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत, किसी व्यक्ति के लिए गिरफ्तारी-पूर्व जमानत के लिए आवेदन करने की पूर्व शर्त "यह मानने का कारण है कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है"। अतः, उक्त अधिकार का प्रयोग करने के लिए एकमात्र पूर्व शर्त अभियुक्त की यह आशंका है कि उसे गिरफ्तार किए जाने की संभावना है। पिछले पैराग्राफ में चर्चा को ध्यान में रखते हुये, एक मामले में अभिरक्षा का प्रभाव दूसरे मामले में गिरफ्तारी की आशंका को खत्म करने का नहीं है।
- vii. यदि श्री लूथरा द्वारा प्रस्तुत की गई व्याख्या को स्वीकार कर लिया जाए, तो इससे न केवल किसी व्यक्ति का दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत पूर्व-गिरफ्तारी जमानत के लिए आवेदन करने का

अधिकार समाप्त हो जाएगा, बल्कि इसके व्यावहारिक अनुप्रयोग में बेतुकी स्थितियाँ भी पैदा हो सकती हैं।

61. मामले का निपटान करने से पूर्व, हम प्रक्रियात्मक कानूनों के तहत दिए गए अधिकारों के महत्व को रेखांकित करना चाहेंगे जैसा कि इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक (1988) 2 एससीसी 602 में उल्लेख किया है। इसमें यह देखा गया कि किसी भी व्यक्ति को संविधान और कानूनों के तहत उसके अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता है। उसे कानून के अनुसार व्यवहार करने का अधिकार है, न कि कानून के उल्लंघन में। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि कानून के तहत प्रदान नहीं की गई विशेष प्रक्रिया के लिए अलग से कानून के समान संरक्षण से वंचित करना, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत अधिकारों से वंचित करने का कारण बनता है। नीचे कुछ प्रासंगिक टिप्पणियाँ उद्धृत की गई हैं:

“41. मामले के उपरोक्त दृष्टिकोण और दोहराए गए सिद्धांत में, यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी को विधि द्वारा अनिवार्य प्रक्रिया द्वारा वाद चलाने का आदेश नहीं दिया गया है, बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया द्वारा आदेश दिया गया है जो संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 का भी उल्लंघन है, जैसा कि अनवर अली सरकार मामले [(1952) 1 एससीसी 1 : एआईआर 1952 एससी 75 : 1952 एससीआर 284 : 1952 आप. एलजे 510] में सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ के निर्णय की टिप्पणियों से स्पष्ट है, जहां इस न्यायालय ने पाया कि यहां तक कि एक अपराधी के लिए जिस पर

अपराध करने का आरोप लगाया गया है. एक विशेष परीक्षण अपने आप में अवैध होगा क्योंकि यह अभियुक्त को उसके बचाव के पर्याप्त और मूल्यवान विशेषाधिकारों से वंचित करेगा, जिसका दावा इसी तरह आरोपित अन्य लोग करने में सक्षम थे।

XXX XXX XXX

81. [...] हम घोषणा करते हैं कि कोई भी व्यक्ति विधि से ऊपर नहीं है, लेकिन साथ ही दोहराते और घोषित करते हैं कि किसी भी व्यक्ति को संविधान और कानूनों के तहत उसके अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता है। उसे कानून के अनुसार व्यवहार करने का अधिकार है न कि उसके उल्लंघन में है। इस न्यायालय ने पक्षकारों को शीघ्र सुनवाई करने में सुविधा प्रदान करने की अपनी चिंता में दिनांक 16-2-1984 को पूर्व में उल्लिखित निर्देश दिए, बिना इस बात की सचेत जागरूकता के कि 1952 के अधिनियम के तहत विशेष न्यायालयों की अनन्य अधिकारिता हैं और कानून द्वारा स्थापित एकमात्र प्रक्रिया होने के नाते, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की शर्तों से कोई विचलन नहीं हो सकता है। यही एकमात्र प्रक्रिया है जिसके तहत इसे निर्देशित किया जाना चाहिए था। दिनांक 16-2-1984 को निर्देश देने के कारण इस न्यायालय ने अनजाने में अपीलार्थी को कानून द्वारा प्रदान नहीं की गई विशेष प्रक्रिया के लिए अलग करके कानून के समान संरक्षण से वंचित करके संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत अधिकारों से वंचित कर दिया था।[...] ”

(जोर दिया गया)

62. इसी तरह, पश्चिम बंगाल राज्य बनाम अनवर अली सरकार (1952) 1 एससीसी 1 में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने कहा कि प्रक्रियात्मक कानून किसी व्यक्ति को बहुत मूल्यवान अधिकार प्रदान करता है, और उनकी सुरक्षा न्यायालय की चिंता का विषय होनी चाहिए, जैसा कि मूल कानून के तहत प्रदान किए गए अधिकारों की है। नीचे कुछ प्रासंगिक टिप्पणियाँ उद्धृत की गई हैं:

“27. यह तर्क कि प्रक्रियात्मक कानून में परिवर्तन महत्वपूर्ण नहीं हैं और जब तक मूल कानून अपरिवर्तित रहता है, तब तक कानून के समक्ष समानता या कानूनों के समान संरक्षण को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है या केवल अनुच्छेद 20 से 22 में संदर्भित मौलिक अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिए, यह तर्क, प्रथम दृष्टि में, निराधार है। अनुच्छेद 14 द्वारा प्रतिपादित समानता का अधिकार उतना ही मौलिक अधिकार है जितना कि संविधान के भाग III में वर्णित कोई भी अन्य मौलिक अधिकार है। प्रक्रियात्मक कानून किसी व्यक्ति को बहुत मूल्यवान अधिकार प्रदान कर सकता है और करता भी है, और उनका संरक्षण न्यायालय की चिंता का विषय होना चाहिए जितना कि मूल कानून के तहत प्रदान किए गए अधिकार है।”

(जोर दिया गया)

63. श्री लूथरा ने यह भी तर्क दिया कि इस मामले पर पहले ही नरिंदरजीत सिंह साहनी (पूर्वोक्त) मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा विचार किया जा चुका है और निर्णय दिया जा चुका है।

यह तर्क दिया गया कि किसी अन्य मामले में अभियुक्त द्वारा दायर अग्रिम जमानत याचिका, जबकि वह एक मामले में अभिरक्षा में है, स्वीकार्य नहीं होगी। हालांकि, हम अपीलार्थी के इस तरह के तर्क से सहमत नहीं हैं। उक्त मामले में, याचिकाकर्ताओं, जिन्हें देश भर के विभिन्न पुलिस स्टेशनों में दर्ज कई प्राथमिकी में अभियुक्त बनाया गया था, ने अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय की अधिकारिता का आह्वान करते हुए दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत निर्धारित प्रकृति में जमानत के लिए आदेश देने का अनुरोध किया था। याचिकाकर्ताओं की शिकायत का सार यह था कि हालांकि उन्होंने एक मामले में जमानत का आदेश प्राप्त कर लिया था, फिर भी उन्हें दूसरे मामले में पेशी वारंट के बल पर जेल में बंद रखा गया था। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, यह अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है, क्योंकि एक मामले में जमानत मिलने के बावजूद उन्हें अपनी स्वतंत्रता से वंचित किया गया।

64. इस मामले में याचिकाकर्ताओं की उपरोक्त दलील को इस न्यायालय ने अंततः इस आधार पर खारिज कर दिया कि भले ही याचिकाकर्ताओं को उनकी स्वतंत्रता से वंचित किया गया हो, लेकिन ऐसा वंचित करना कानून की उचित प्रक्रिया के अनुसार था। इस प्रकार, इस न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका को खारिज कर दिया क्योंकि अनुच्छेद 21 का कोई उल्लंघन साबित नहीं हुआ।
65. स्पष्ट रूप से, इस न्यायालय को उपरोक्त मामले में किसी ऐसे अभियुक्त द्वारा अग्रिम जमानत दिए जाने के आवेदन की स्वीकार्यता के प्रश्न पर विचार करने का कोई अवसर नहीं मिला, जो किसी अपराध के संबंध में पहले से ही न्यायिक अभिरक्षा में है। इसके विपरीत, इस न्यायालय ने नरिंदरजीत सिंह साहनी (पूर्वोक्त) में इस मुद्दे की जांच की है कि क्या इस न्यायालय द्वारा अपने रिट अधिकारिता का प्रयोग

करते हुए अग्रिम जमानत की प्रकृति में एक व्यापक आदेश पारित किया जा सकता है, जिसमें याचिकाकर्ता को कई आपराधिक कार्यवाहियों में अभियुक्त के रूप में रखा गया था।

66. दूसरी ओर, वर्तमान मामले में, हमने एक ऐसे अभियुक्त के कहने पर दायर अग्रिम जमानत आवेदन की स्थिरता के मुद्दे पर निर्णय लिया है जो पहले से ही एक अलग अपराध में न्यायिक अभिरक्षा में है और इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ऐसा आवेदन दं.प्र.सं. की योजना के तहत पोषणीय है। हालांकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि ऐसे प्रत्येक आवेदन पर सक्षम न्यायालयों को अपने गुणागुण के आधार पर निर्णय लेना होगा।
67. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुये, वर्तमान अपील असफल होनी चाहिए और इसे खारिज किया जाता है।
68. बम्बई उच्च न्यायालय अब प्रत्यर्थी अभियुक्त द्वारा दायर अग्रिम जमानत आवेदन पर उसके गुणागुण के आधार पर निर्णय करेगा।
69. लंबित आवेदन, यदि कोई हों, का निपटान किया जाता है।
70. रजिस्ट्री इस निर्णय की एक-एक प्रति देश भर के सभी उच्च न्यायालयों को भेजेगी।

मामले का परिणाम: याचिका खारिज की जाती है।

दिव्या पांडे द्वारा शीर्ष टिप्पणियां तैयार किए गये हैं।

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

Disclaimer: *The translated judgment in vernacular language is meant for the restricted use of the litigant to understand it in his/her language and may not be used for any other purpose for all practical and official purposes, the English version of the judgment shall be authentic and shall hold the field for the purpose of execution and implementation.*